वर्ष ४

# भक्ति

संख्या २

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वं धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

पौष सम्वत् १९८६

भगवत् के दो स्वरूप

Bhakti Press, Rewari.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ४ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, पौष पूर्णिमा सं० १९८६। | अङ्क ४

## वेदोपदेश

ओं यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ १ ॥

जो द्युतिमान् प्रकाशात्मक देव जागते पुरुष का दूर से दूर चला जाता है, जो सोते हुवे पुरुष का इसी प्रकार से आता जाता है, जो सुषुप्त पुरुष का फिर आगमन करता है, जो अतीव विप्रकृष्ट और अनागत का ग्रहण करने वाला और जो ज्योति का भी ज्योति है, वह मेरा मन शुद्ध संकल्पवान् हो ॥१॥

ओं येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २ ॥

कर्मानुष्ठान में तत्पर बुद्धि सम्पन्न मेधावी यज्ञ में जिस मन से उत्तम कर्मों को करते हैं जो प्राणी मात्र के गात्र में स्थित है, जो सब से प्रथम पूजनीय भाव से स्थित है वह मेरा मन शुद्ध संकल्पवान हो ॥२

**ओं यत्प्रज्ञानमुतचेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।**
**यस्मान्न ऋते किश्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ३ ॥**

जो प्रज्ञान, चित्त, और धैर्यरूप है, जो प्राणी मात्र का अन्तर आत्म स्वरूप अविनाशी ज्योति है, जिस के बिना कोई भी कर्म नहीं होता, वह मेरा मन शुद्ध संकल्पवान् हो ॥ ३ ॥

**ओं येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।**
**येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ४ ॥**

जिस अविनाशी मन ने यह सब भूत, वर्त्तमान, भविष्यत् को ग्रहण किया है, जिसके द्वारा सात होता यज्ञ का विस्तार करते हैं वह मेरा मन शुद्ध संकल्पवान् हो ॥ ४ ॥

**ओं यस्मिन्नृचः साम यजू ँषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथना भाविवाराः ।**
**यस्मिंश्चित ँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ५ ॥**

जिस में ऋक्, साम, यजु इस प्रकार स्थित हैं जिस प्रकार रथ की नाभि में अरे, जिसमें प्राणी मात्र का ज्ञान, पट में तन्तु सम ओत प्रोत है, वह मेरा मन शुद्ध संकल्पवान हो ॥ ५ ॥

**ओं सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनइव ।**
**हृत्प्रतिष्ठं यद जिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ६ ॥**

जैसे अच्छा सारथी लगाम द्वारा घोड़ों को चलाता है वैसे ही जो मनुष्यों को प्रेरणा करता है, जो कदापि, जीर्ण नहीं होता और जो वेगवान् पदार्थों से भी अधिक वेगवान है वह मेरा मन शुद्ध संकल्पवान हो ॥ ६ ॥

**ओं हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।**
**स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७ ॥**

जो हिरण्यगर्भ इस पूर्व की उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान था और जो उत्पन्न होकर भी सब विकार जात ब्रह्माण्ड का ईश्वर था वह इस विस्तीर्ण पृथिवी को और आकाश को धारण करता है ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें ॥ ७ ॥

**ओं य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्यदेवाः ।**
**यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥**

जो आत्मा का तथा बल का दाता है, जिस की पूर्ण आज्ञा को सब देवता पालन करते हैं, जिसकी छाया अमृत और मृत्यु हैं ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें ॥ ८ ॥

**ओं यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजाजगतो बभूव ।**
**य ईशे अस्यद्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ९ ॥**

जो स्थावर जंगम मात्र का अपने महात्म्य से एक अद्वितीय ईश्वर है, जो इस द्विपद तथा चतुष्पद वर्ग का शासन न करने वाला है ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें ॥ ९ ॥

**ओं यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्ररसया सहाहुः ।**
**यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १० ॥**

जिस परमात्मा की महिमा को यह हिमालयादि पर्वत प्रख्यात करते हैं जिसकी महिमा को नदियों सहित यह समुद्र वर्णन कर रहे हैं, जिसके बाहु रूप से यह दिशायें स्थित हैं, ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें ॥ १० ॥

**ओं येनद्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः ।**
**यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ११ ॥**

जिस परमात्मा ने अन्तरिक्ष और पृथिवी को स्थिर कर रक्खा है जिस ने स्वर्ग को अपने स्थान पर और सूर्य को आकाश मे नियत किया है । जो आकाश मे जल को उत्पन्न करने वाला है, ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें ॥ ११ ॥

# अतिथीसेवा परायण दीनबंधुदास

भक्त दीनबन्धुदास का जन्म अवन्ति नगर मे एक उत्तम ब्राह्मण कुल में हुवा था । इनके कुटुम्ब मे इनकी एक धर्मपत्नी मालती, दो पुत्र तथा एक पुत्रवधु थी । ईश्वर कृपा से पांचों प्राणी एक ही मनके थे । सभी श्रीहरि की कथामृत के पान करने वाले, भगवत्-भजन में निमग्न रहने वाले और श्रीहरि के चरण कमलों में मन प्राण समर्पण करने वाले थे । वे अपना अधिक समय साधु समागम व अतिथी सेवा में ही बिताते थे ।

उनका एक मात्र जीवन व्रत परउपकार करके दूसरों का सुखी करना था। अतिथी सेवा में दृढ़ श्रद्धा होने स उनका पूर्ण सत्कार किया करते। यदि किसी प्रकार अपनी अयोग्यता समझते तब भी उन का तिरस्कार न कर मधुर वचनों से ही उन का सत्कार करते।

इस प्रकार उनके अतिथी सेवा रूपी पुष्प की मधुर गंध देश ,देशान्तर मे फैलने लगी। यहां तक कि प्रकृति के राज्य का उलंघन कर वह सुगन्ध भगवान् के अप्राकृत राज्य में भी पहुंच गई।

संसार में व्याकुलता भी नाना प्रकार की होती हैं परन्तु 'अमुक व्यक्ति मुझे चाहता है' यह बात दीनबन्धु भगवान् को मालूम होते ही उससे मिलने को जिस प्रकार वे व्याकुल होते हैं वैसे महान् व्याकुलता के सामने हमारी क्षणिक संसारिक व्याकुलता तुच्छातितुच्छ है। भगवान् के समीप यह गन्ध पहुंचते ही वे वहां पहुंचने को झट तैयार होगए और अपने भक्त की अमर कीर्ति फैलाने का विचार करने लगे। दीनदयाल प्रभु दीन-बन्धु दास को तथा अवन्ति नगर को पावन करने के लिये वहां पहुंच गये। भक्त को कसोटा पर कसने के लिए उन्होंने तक्षक नाग को उसके ज्येष्ठ पुत्र को काटने की आज्ञा दी।

पुत्र को इस प्रकार अचानक काल के गाल में समाया देख दास परिवार के शोक की सीमा न रही। वे करुण स्वर से विलाप करने लगे। इसी समय वे मायापति अपूर्व संन्यासी का वेष धारण कर कमंडलु हाथ में लिये पूछते २ भक्त के द्वार पर आ डट। द्वार पर से किसी अतिथि के पुकारने का मधुर स्वर करुण क्रन्दन को भेदकर दीनबन्धु दास के कर्णगोचर में प्रवेश हुवा। अमृत से भी सुमधुर शब्द सुनते ही दीनबन्धु दौड़ कर चेहरे का विषाद छिपाने के लिए मुंह धोकर जिससे कि इस शोक घटना को कोई जानने न पावे बाहर आए और अतिथि से कर जोड़ कर आज्ञा पूछने लगे।

दीनबन्धु दास के वचन सुनकर संन्यासी गम्भीर स्वर से कहने लगे 'हे भक्त! तेरे अतिथी सत्कार की कीर्ति सुनकर मैं तेरे पास आया हूं। मैं क्षुधा से अति व्याकुल हूं इसलिये मुझे इसी क्षण भिक्षा दे'।

संन्यासी की बात सुन कर दीनबन्धु उन्हें भक्ति पूर्वक प्रणाम कर, आसन पर बैठाकर, मैं अभी आता हूं कह कर भीतर चला गया और अपने स्त्री पुत्र से सब हाल वर्णन कर पूछने लगा कि इस विकट समय में तुम से अतिथी सत्कार होगा या नहीं जल्दी बताओ? उसके अतिथि भक्ति युक्त वचन श्रवण कर, उसकी स्त्री, कनिष्ठ पुत्र व पुत्रवधु सब ही एक स्वर से कह उठे, अरे मरा हुवा तो अब फिरसे आने का नहीं है, अतिथी निराश लौटा देने के समान दूसरा महापातक भी कोई नहीं है। इसलिये पहिले अतिथी सत्कार करना ही योग्य है, इस के बाद मृत देह का जो होगा सो किया जायगा'। धन्य प्रभु! तेरी कृपा बिना परमार्थ सहायक परिवार भी मिलना कठिन है। धन्य है दीनबन्धुदास और उनके परिवार को जो ऐसे विकट सयम में भी अतिथी को निराश लौटाना महापातक समझते हैं। यदि कोई आज कल के विद्याभिमानी तार्किक महापुरुष होते तो संन्यासी महाशय का ऐसा सत्कार होता कि वे सारा उम्र याद रखते। प्रभो! ऐसा पांडित्याभिमान और तर्क शीलता

अपनी भारत सन्तान से तो सदा दूर ही रखना यह भारत भूमि तुम्हारी लीला स्थली है। यदि कहीं रंग पलट गया तो फिर तुम्हारी लीला में भी बाधा आ सकती है। अस्तु।

अपने परिवार के ऐसे बचन सुनकर दीनबंधु के हर्ष का पार नहीं रहा और ऐसे कुटुम्ब का संग देने के लिये प्रभु को अनेक धन्यवाद देने लगे। मृत पुत्र के शव को एक चद्दर में अलग रख, घर को लीप पोत कर शुद्ध बना स्नान कर भोजन बना कर तैयारी करने लगे। भोजन तैयार कर दीनबन्धु संन्यासी महाराज को भीतर बुलाकर एक आसन पर बैठा कर, भोजन परोसने (परिवेशन करने) लगे। सब वस्तुएं आने के बाद संन्यासी महाराज से भोजन करने की प्रार्थना करने लगे। सन्यासी महाराज केवल अपने लिए एक ही थाली परोसी हुई देख कर बोले कि मैं अकेला कभी भोजन नहीं करता। इस लिये तुम लोग घर में जितने व्यक्ति हो सब के लिए परोस कर लाओ और मेरे साथ बैठ कर भोजन करो, नहीं तो मुझे भी खाने की जरूरत नहीं।

यह सुनकर सभी एक दूसरे की तरफ ताकने लगे और विचार करने लगे कि हम लोग सब संन्यासी महाराज के साथ भोजन न करेंगे तो अतिथी निराश ही लौट जायंगे, इस से हमारे अतिथि धर्म में बड़ी बाधा आयगी। यह विचार कर सब चुपचाप भोजन के लिए उनके साथ बैठ कर शुरू करने की राह देखते हुए उनकी तरफ ताकने लगे। लेकिन फिर भी अतिथी को भोजन न करते देख बड़े व्याकुल हुए। अतिथी महाराज थोड़ी देर विचार कर बोले कि मैंने आते समय नगर में सुना था कि तुम लोग पांच व्यक्ति हो लेकिन अब मेरे साथ तो चार ही बैठे हो। एक कहां है उसको बुलाओ तब हम भोजन करेंगे।

ऐसे बचन सुन कर सभी डर के मारे कांपने लगे और सब की आंखों से आंसुओं की धारा गिरने लगी इस अवस्था को देख संन्यासी बड़े आश्चर्यान्वित की क्यों पूछने लगे कि तुम लोगों की ऐसी स्थिती क्यों होगई। तुम्हारा दूसरा पुत्र कहां है? सब हाल सच सच कहो।

दीन बन्धु दास ने इस प्रकार आश्वासन पा कर सब हाल आदि से अन्त तक कह सुनाया। संन्यासी सब वृत्तान्त सुनकर बोला, "क्या तुम सत्य कहते हो? मुझे तो तुम्हारी बातों का विश्वास नहीं होता। तुम्हारे मृत पुत्र की देह को यहां लाओ तो सही, मैं भी देख लूं"

विचारा दास परिवार क्या करता? अतिथी की आज्ञानुसार शव को निकाल कर उनके सामने रख दिया। शव को देख सन्यासी कहने लगे, "अरे दीनबन्धु! तुम को ज्ञानी या भक्त कौन कहता है? तू महान दुष्ट और निर्दई पुरुष है जो पुत्र के मृत देह को घर में रखकर मेरे साथ आनन्द से भोजन करने आ बैठा! तेरे सदृश कठोर और पापी पिता दूसरा कौन होगा?"

सन्यासी के ऐसे बचन सुनकर दीनबन्धु कहने लगा, "महाराज! आप का कहना सत्य होगा परन्तु मेरी एक बात सुन लीजिये! इस संसार में कौन किसका पुत्र और कौन किस का पिता है?

आम्र वृक्ष की तरह है जिस पर यथा समय मिजर (फूल, मोर फलते हैं। पीछे से उन की जगह छोटी छोटी कैरियें होती हैं। उनमें भी कितनी मोटी

होती है कितनी उसी रूप में नाश हो जाती हैं। मोटी कैरियां भी समय पाकर पक कर नाश को प्राप्त होती हैं अथवा मनुष्य उन्हें अपने उपभोग के काम में ले आता है। इस में कौन किस का शोक करे? इस संसार में उसी प्रकार बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री या पुरुष कोई भी हो काल चक्र से बचकर निकल जाय ऐसा नहीं है। राजा व रंक सभी के सिर पर समान रूप से काल चक्र घूमा करता है एक न एक दिन पहले पीछे करके सभी को मरना है। इसी प्रकार मेरे पुत्र की भी अवधि आ पहुंची होगी इसी से वह परब्रह्म परमात्मा के दरबार में चला गया। हम लोगों का समय आने से हम लोग भी चले जायंगे इसमें व्यर्थ शोक करने से क्या लाभ? हम लोगों से अतिथी सेवा बन जाती है इसे ही हम तो अपने सद्भाग्य और परम लाभ की बात समझते हैं।

यह सुन कर संन्यासी महाराज हंसने लगे और थोड़ी देर बाद पुत्र की माता को संबोधन कर कहने लगे, "अरे तेरा हृदय भी कैसा कठोर है। पिता की अपेक्षा माता का प्रेम पुत्र पर अधिक होता है लेकिन फिर भी तुम अपने पुत्र के शव के घर में रहते भी भोजन करने बैठ गई! अहो! निर्दयता की भी सीमा होती है!"

यह सुन कर वह भी संन्यासी को नमन कर धीरे २ कहने लगी, महाराज, मैं आप को अन्तःकरण की बात कहती हूं। जिस प्रकार एक कुम्हार अपने चक्र पर मट्टी से अनेक प्रकार के घट वगैरह बनाता है इन में कई ठीक होते हैं कई बिगड़ जाते हैं कितने ही पकने में खराब हो जाते हैं लेकिन उनके लिये शोक नहीं करता। उसी प्रकार हमें भी अपने पुत्र के लिये शोक करना उचित नहीं है। इस असार संसार में कोई किसी का सम्बन्धी नहीं है।" (जिस प्रकार अनेक पक्षी रात्री को वृक्ष पर विश्राम करने आते हैं प्रातःकाल होते ही इधर उधर उड़ जाते हैं। इस में जो कृत्रिम सम्बन्ध मालूम होता है, यह सभी माया की लीला है)"

दीनबन्धु की पत्नी का सम्भाषण सुन कर संन्यासी को परम सन्तोष हुवा तदनंतर उसने दीनबन्धु के दूसरे पुत्र को बुलाकर कहा कि हे भाई! तू भी कैसे पाषाण हृदय का है।! इस संसार में भ्रातृ प्रेम ही सच्चा प्रेम कहा जाता है। तुम्हारा बड़ा भाई संसार से गुजर गया तब भी तू हम लोगों के साथ भोजन करने को तैयार होगया। तुझे शरम भी नहीं आती? तेरे जैसा अज्ञानी, मूर्ख और निर्दई दूसरा कौन होगा?

संन्यासी के उपरोक्त वचन सुनकर ब्राह्मण कुमार विनय पूर्वक बोला, "हे महाराज! जिसे आप मेरा बड़ा भाई कहते हैं वह न मालूम कितनी बार छोटा भाई या अन्य सम्बन्धी हो गया होगा। जिस प्रकार हाट में बाजार लगने के समय अनेक जगह के व्यापारी आकर आपस में हिल मिल कर बड़े प्रेम से अपना २ कार बार करते हैं और पीछे अपनी २ राह चले जाते हैं कोई किसीका शोक नहीं करता। इसी प्रकार यह संसार भी एक हाट है और मेरे भाई का काम इस में खतम हो गया होगा इसलिए वह चला गया। मेरा अभी काम शेष है ऐसा मालूम होता है इसीलिये मैं अभी तक जीवित हूं। इस में शोक करने की कौनसी बात है!"

बालक का प्रत्युत्तर सुनकर संन्यासी को बड़ा आनन्द हुवा और मन में उस की बुद्धि की

प्रशंसा करने लगे। अब दीनबन्धु की पुत्रवधु की परीक्षा लेने के अभिप्राय से इसे कहने लगे, "हे बहन! तेरा भी आचार व्यवहार कैसा है? संसार में पति ही स्त्री का सर्वस्व है। तेरा पति मर गया और अभी तक उसका शव पड़ा हुवा है, तब भी तू हम लोगों के साथ भोजन करने बैठ गई यह कैसे आश्चर्य की बात है?"

यह सुनकर बधवा बोली, "महाराज! मेरी भी एक बात सुन लीजिये जिस प्रकार वर्षा ऋतु में जलके वेग के कारण नदी का प्रवाह दोनों किनारों से टकराता हुवा जोर से बहता है और उसकी तेजी के कारण कोई किनारे का वृक्ष उस के बीच में आकर जड़ से उखड़ कर बह जाय तो क्या रहे हुये वृक्ष भी उस के साथ खिंच जायंगे या उस का शोक करेंगे? इसी तरह मेरा पति भी अपना अवधि के कारण काल के प्रवाह में बह गया, मेरी अवधि आने से मैं भी चली जाऊंगी। इस में शोक की बात ही कौनसी है?"

इस प्रकार सब की परीक्षा लेकर संन्यासी मन में बड़े ही प्रसन्न हुये और उन्हें हृदय से धन्यवाद देते हुये उस मृतक को अपने कमंडलू में से जल और तुलसीदल निकाल कर उस के मुंह पर छींटें देकर उसे जीवित कर दिया। ब्राह्मण कुमार मानों गहरी नींद से सो कर उठा हो इस प्रकार उठकर सामने संन्यासी को देख कर उन के चरणों में लौट गया। संन्यासी इस को भी परीक्षा लेने के लिये इससे बोले, "हे कुमार! देख, ये तेरे माता पिता, भाई बनिता सब तेरी कमाई पर तागड़ धिन्ना करते हैं। परन्तु आज तू मर गया था और ये सब लोग तेरे मृतदेह का संस्कार किये बिना ही माल गटकने को तैयार हो गये थे। अरे! कैसी निर्दयता है! तूने कहां आकर जन्म लिया?

ब्राह्मण कुमार संन्यासी के ऐसे वचन सुनकर कहने लगा, "महाराज आप ज्ञानी होकर ऐसे अज्ञानियों की सी बात कैसे कहते हैं? जिस प्रकार जङ्गल में एक वृक्ष के नीचे रास्ते चलते मुसाफिर धूप में थक कर विश्राम लेने को ठहरते हैं और फिर एक एक कर अपने २ मार्ग को चले जाते हैं। इसी प्रकार मनुष्य पूर्व जन्म के ऋणानुबन्ध के कारण एक दूसरे से आ मिलते हैं और फिर अपना कार्य समाप्त कर चले जाते हैं। संसार में कौन किस का पुत्र, स्त्री, पति या माता पिता है? इस में कौन किस का शोक करे। इस संसार में तो श्रीकृष्ण परमात्मा के भजन में और साधु सन्तों की सेवा में ही दिन बिताना श्रेष्ठ और कल्याणकारी है। उसी का जीवन धन्य और कृतार्थ है जो इस प्रकार अपने जीवन को बिताते हैं।"

कुमार के ऐसे वचन सुनकर संन्यासी के आनन्द का पार नहीं रहा और प्रसन्नता से मुसकराते हुये बोले, "दीनबन्धु दास, वत्स! तुम्हारा पांचों व्यक्तियों का अकारण शुद्ध व्यवहार, अतिथि सेवा का अनुराग और भगवान में निस्वार्थ भक्ति देख कर मुझे बड़ा आनन्द होता है। तुम लोग अपना जीवन सुख से बिता कर अन्त में मोक्ष पद पावोगे।"

संन्यासी के आशीर्वाद पाकर वचन सुन कर सब उन के चरणों में लिपट गये और किसी का भी उठने को मन नहीं हुवा। उन्हें इस समय एक अपूर्व अद्वितीय आनन्द का अनुभव होने लगा। इस समय उन्हें एक अद्भुत ध्वनि कर्ण गोचर हुई

कि मैं अब जाता हूं और तुम्हारी अला बला आपत्ति विपत्ति सब लिये जाता हूं। तुम लोग मुझे और इस अपूर्व आनन्द को भूल मत जाना। आज से मैं तुम्हारा और तुम हमारे। मैं कौन हूं? वही जगत्-जीवन भगवान्!

यह सुनते ही उनने मुंह ऊपर कर नेत्र खोले तो वहां कुछ भी दिखाई न दिया। उस दिव्य ज्योतिर्मय संन्यासी को फिर न देख बड़े व्याकुल हुये और प्रार्थना करने लगे कि प्रभु! आप सर्वशक्तिमान हैं जिस प्रकार वर्तने की आप ने आज्ञा की है उस प्रकार रखना आप के ही हाथ है इस तरह भगवान के आशीर्वाद से दीनबन्धु दास परिवार सहित अतिथी की सेवा, साधु संग और ईश्वर भजन में दिन बिताने लगे और अन्त मे श्रीहरि के अभय पद को प्राप्त हुए।

धन्य है! गृहस्थाश्रम। इसी आश्रम में अमृतोपम अतिथी सेवा बन सकती है और ये अतिथी सेवा ही भगवान् को अतिथी वेष में आकर्षण कर लाती है। गृहस्थाश्रमी वाचक बन्धुवो! यदि आप से और ज्यादा अतिथी सेवा न बन पड़े तब दो चार मधुर वाक्यों से ही अतिथि सत्कार कर देना। तिरस्कार तो भूलकर भी मत करना। यदि इस प्रकार अतिथि सेवा में संलग्न रहे तो संभव है एकदिन दीनबन्धु-दास की तरह तुम्हारे यहां भी भगवान् पधार कर कृतार्थ कर दें।

(गुजराती से)

# भक्ति की महिमा

[ ले० गनेशीलाल चौबे दिल्ली ]

भक्ति अमूल्य निधि है जिस दाम के प्रत्येक को सहज में मिल सकता है। मोहन भोग खाने में बड़ा आनन्द आता है, और उसके आनन्द को दूसरों से कह भी सकते हैं परन्तु भक्ति के आनन्द को कोई कह भी नहीं सकता यह बिना दाम खर्च किये ही मिल सकता है। मोहन भोग की सामग्रियों को तो प्रत्येक जानता है परन्तु भक्ति की सामग्रियां को भी याद रखना चाहिये। सत्य बोलना साधु सेवा करना, भगवान् को भोग लगा कर भोजन करना, प्रेम के साथ भगवान् की आरती व कीर्तन करना, ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना, गुरू व महात्माओं की शरण जाना और उनके वचनों पर विश्वास करना जिससे शुभ कामों में प्रीति उपजे इत्यादि हैं। इनके आचरण से पूर्ण भक्ति प्रकट होगी, भक्ति के उपरान्त ज्ञान उपजेगा, ज्ञान से दुःखों से छुट जाओगे, दुःखों से छुट जाने के पश्चात् निर्वाण पद प्राप्त होगा फिर जीवन प्राण हो जाओगे, जीवन प्राण के उपरान्त नारायण में प्रेम बद्ध हो जाओगे जो सकल जगत् में व्यापक हैं तथा सबके कर्ता धर्ता हैं। कहां तक लिखूं यदि भक्ति सच्ची होगी तो परमात्मा भी वश मे हो जायेंगे। भक्त की प्रेरणा से ईश्वर को

मनुष्य रूप धारण करना और उस भक्त के घर में जन्म लेना पड़ेगा। जैसे पहले युगों में हुआ है जिसने विष्णु भगवान् के अवतार हुवे हैं वे सब भक्तों ही की प्रेरणा से हुवे हैं। महाराज दशरथ जी ने विष्णु भगवान् की भक्ति की और प्रार्थना की, भगवान् को श्रीरामचन्द्र रूप धारण करना पड़ा, मर्यादा पुरुषोत्तम प्रकट हुए और लीलायें की।

श्रीहनुमान् जी महाराज ने भक्ति के ही प्रताप से बड़े २ अद्भुत कार्य्य कर दिखाये जो साधारण मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर हैं विभीषण को भक्ति के प्रताप से उस लंका का राज्य मिल गया जो लंकपति रावण ने कठिन तपस्या करके शिवजी से वर स्वरूप में प्राप्त की थी। भक्ति ही के प्रभाव से सुग्रीव ने खोया हुवा राज्य प्राप्त किया था। प्रह्लाद भक्त की कथा को कौन नहीं जानता श्रीभगवान् को भक्त की प्रेरणा से स्वयं नृसिंह रूप धरण करना पड़ा था। भक्तों ही के प्रताप से श्रीविष्णु भगवान् को श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द रूप धारण करना पड़ा और भक्तों को अनेक लीलायें कर दिखाई। महाभारत ग्रन्थ में अनेक भक्तों की कथायें हैं भीष्म पितामह की प्रतिज्ञा रक्खी, जयद्रथ का वध करा कर अपने भक्त अर्जुन की पत रक्खी, द्रौपदी की लाज रक्खी और दुष्ट दुशासन का वध कराया एक भील ने भक्ति के प्रभाव से ही मिट्टी की मूर्त्ति महाराज द्रोणाचार्य्य जी की स्थापन करके बाण विद्या ग्रहण की। भक्ति के प्रताप को मैं तुच्छ जीव कैसे वर्णन कर सकता हूं। शेषजी महाराज भी अपने सहस्र मुखों से भक्ति की महिमा कहने में असमर्थ हैं।

नारायण स्वामी कहते हैं:-

चाहे तू योग कर अकुटी मध्य ध्यान धरि।
चाहे नाम रूप मिथ्या जान के निहार ले॥
निर्गुण निर्भय निराकार ज्योति व्याप रह्यो।
ऐसा तत्व जान नित मन में तू धार ले॥
नरायण अपने को आप ही बखान करि।
सो सों वह भिन्न नहीं या विधि पुकार ले॥
जों लों तोहि नंद को कुमार नहीं दृष्टि परे।
तब लों तू भले बैठि ब्रह्म को विचार ले॥

प्रिय पाठक! जो चाहे जितना यत्न करलो बिना नंद के लाला की भक्ति के सब निष्फल है अगर कोई बिना भक्ति किये युए ईश्वर से मिलना चाहे तो वह कदापि नहीं मिल सकता उसके सब यत्न निष्फल हैं।

---

# भगवत् के दो स्वरूप

## एक भक्त की प्रार्थना

( ले० श्री पूज्य भोले बाबाजी )

हे जगदीश्वर वृन्दावन बिहारी! हे श्रीराधारमण माधव मुरारी! हे श्रीगोविन्द राधाकृष्ण गोपाल! हे श्रीमदनमोहन घनश्याम नन्दलाल! हे श्रीमुरली मनोहर श्याम सुन्दर! हे श्रीभगवान् गोपीनाथ गिरधर! हे पूर्णकाम शोभाधाम! हे शरणागत

वत्स ! हे प्रणतार्ति भंजन, देव निरंजन ! हे सच्चिदानन्दघन ! पूर्ण ब्रह्म ! नित्य, निर्विकार ! हे यशोदा किशोर गोपिका मक्खन चोर ! हे दीनबंधु दीनानाथ ! करुणा निधान ! जैसा मेरा वृत्तांत है, उसको किस मुख से निवेदन करूं, आप सब जानते ही हैं। मेरा वृत्तांत किसी प्रकार भी आपके संमुख निवेदन करने योग्य नहीं है ! निकम्मा हूं। निकम्मा मेरा जीवन है, अपने जीवन से मुझे स्वयं ही लज्जा आती है। न इधर का हूं, न उधर का ! किधर का भी नहीं हूं ! न दुनियां का हूं, न दीन का, किसी दीन का नहीं हूं ! न जप किया, न तप किया, न उपासना की, न कर्म किया। न दया की, न धर्म किया. योगी नहीं हूं, यती नहीं हूं, सर्वदा विषयासक्त रहा हूं ! न यज्ञ किया, न दान किया ! लोक परलोक का न कोई सामान किया. मेरे प्रमाद का अंत नहीं है ! आपके पावन धाम में जाने योग्य नहीं हूं ! सारांश यह है कि मेरे समान पापी कोई नहीं है। सब से बढ कर मैं ही पापी हूं ! इसलिये आपके सामने प्रार्थना करने को मुख नहीं खुलता परंतु जब आपकी दयालुता और पतित पावनता का ध्यान करता हूं तो निर्भय हो जाता हूं ! भला . एक छोटे से राजा का नौकर भी अपने स्वामी और प्रजा के हजारों अपराध करने पर भी दंड आदि से बचा रहता है और सब पर अपनी आज्ञा चलाता है तो मैं तो ऐसे पूर्ण ब्रह्म स्वामी का किंकर हूं कि जिन की माया एक महान तुच्छ को अनेक ब्रह्माडों का अधिष्ठाता बना देती है तो फिर मुझे किससे भय करना चाहिये। फिर भी मन ऐसा पापी है कि आप के संमुख नहीं होता, विमुख ही रहता है।

'भजन बिन जीवत जैसे प्रेत' !
'भजन बिन मिथ्या जन्म गंवायो' !
'दोऊ मे एको न भई' !
'सब दिन गयं विषय के हेतु' !

ऐसे अपने निकृष्ट आचरणों को देख कर परिणाम सोचता हूं तो कहीं ठिकाना लगता दिखाई नहीं देता परन्तु आपका एक वचन याद करके टूटी हुई हिम्मत बंध जाती है। आपका वचन है:-'जिस समय जीव मेरे संमुख होता है, इसी क्षण कोटि जन्म के पाप को नष्ट कर देता हूं। और भी आपका वचन है:-

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते, ।
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

अर्थात् जो एक बार भी मेरे शरणागत आता है, उसको मैं सर्व भूतों से अभय कर देता हूं, यह मेरा प्रण है। इस प्रण में यह नियम नहीं है कि वह साधु हो, या असाधु, मन से शरण हो अथवा ऊपर से, इसी आपके वचनानुसार सचमुच अथवा झूंठ मूंठ, मन से अथवा ऊपर से, दिखलाने के निमित्त वंचकता से आपके शरण होकर 'आपका हूं' उच्च स्वर से पुकार कर यह भिक्षा मांगता हूं कि किसी शरीर में, किसी लोक में हूं, आपका यह ध्यान निरन्तर स्थायी रूपसे मेरे हृदय में बना रहे:-

## भगवत् ध्यान

परम शोभायमान चौरासी कोस का ब्रज मंडल है। बारह वनों से और बारह उपवनों से यह ब्रज मंडल मंडित है ! वहां की रज को ब्रह्मादिक अपने मस्तक पर तिलक लगाते हैं, चौरासी कोस

की परिक्रमा करके शुद्धता और सिद्धता पाते हैं! जिस पावन भूमि का एक बार का दर्शन असंख्य जन्मों के महापातकों, और उपपातकों को दूर करके जीव को श्रीकृष्ण परायण कर देता है, ऐसे चौरासी कोस के ब्रज मंडल में यमुना जी के तट पर अनेक विहार स्थान हैं। उन विहार स्थानों के मध्य में कमल कर्णिका के समान नित्यवान श्रीवृन्दावन मुख्य विहार स्थल है। इस विहार स्थल में कमलाकार छः आवर्त हैं पहिले आवर्त में गुलाब चमेली, मोलिया जुही आदि, दिव्य फुलवारी लगी हुई है, दूसरे आवर्त में श्यामा गौरी शशिल आदि गौवें शोभा दे रही हैं, तीसरें आवर्त में नन्द आदि गोप विराजमान है, चौथे आवर्त में श्रीदामा आदि भगवत् सखा यथा योग्य स्थानों पर बैठे हुये हैं, पांचवें आवर्त में गोपियों की सभा है और छठे आवर्त में श्रीयुगल महामंगल मूर्ति के विराजमान होनेका दिव्य रत्न सिंहासन शोभायमान है। उस रत्न सिंहासन की शोभा, सुन्दरता, चमक दमक का वर्णन शेष शारदा भी नहीं कर सकते। तो तुच्छ बुद्धि मनुष्य की जिह्वा में सामर्थ्य ही कहां है कि वर्णन कर सके। सौ करोड़ सूर्य और चन्द्रमाओं की ज्योति उसके सामने फीका है! उस सिंहासन के ऊपर एक ऐसा शोभायमान अद्भुत वितान तना हुआ है कि जिसकी जगमगाहट और झिलमिलाट देख कर मन की आंखों के सामने चकाचौंध आजाता है वितान में दिव्य नीलम पुखराज, मोती और जवाहरात की लड़ियों से गुथी हुई झालर लगी हुई है, झालर में लता द्रुम, गुल्म, दल, फल फूल, मृग, मयूर, हंस, सारस, कोकिला भ्रमर आदि मणिमय नाना रंग के चैतन्य स्वरूप हैं। जैसे सिंहासन का तेज है इसी प्रकार इनका तेज है! ऐसे अलौकिक सिंहासन पर श्रीनन्दनन्दन, भक्त उरचन्दन, व्रज बिहारी, रमाकान्त मुरारी, वंशीधारी ऐसी शोभा और शृंगार के सहित विराजमान हैं कि जिस शोभा और शृंगार का वर्णन वेद, ब्रह्मा, शेष शारदा से नहीं हो सका! सब वर्णन करते २ हार जाते हैं और अंत में 'शोभा अपार है, वर्णन नहीं हो सका' ऐसा कह कर चुप हो जाते हैं। भगवान् के चरण कमलों के नखों की द्युति ब्रह्मा, शिवादि योगेश्वरों को ब्रह्मानन्द का प्रकाश करने वाली है! मनोहर चरण ऊपर से श्याम हैं, नीचे से अरुण हैं, यानि इनकी सुन्दरता की उपमा श्याम और अरुण कमल से दी जाय तो नहीं बनता। चरण कमलों की सुन्दरता के सामने नीलमणि और पद्मराग मणि की ज्योति फीकी लगती है। इस पर एक तुर्रा और भी है कि सखियों ने चरण कमलों पर कहीं तो मेंहदी का रंग रच दिया है और कहीं महावर लगा दिया है. चरणों के अंगुठे में जड़ाऊ छल्ले पहिना दिये हैं! पैरों के ऊपर सुवर्ण जटित कड़े और रत्न जटित पायजेब झलक रहे हैं! पीताम्बरी धोती बिजली की छवी को लजा रही है. गंभीर मनोहर नाभि के ऊपर त्रिवल्ली शोभा दे रही है छाती चौड़ी है! चौड़ी छाती के ऊपर धुकधुकी, बनमाल, वैजयन्ती माला और गज मोतियों का हार विराजमान है! प्याजी रंग की बारीक जरतारी का बाघा मनोहर, सुकुमार श्रीअंग पर सजा हुआ है, जरीका पीताम्बरी दुपट्टा दोनो कंधों के ऊपर से छाती पर आकर कमर तक लटका हुआ है! मोतियों के छोटे २ दाने की दोहरी कंठी गले में है, हाथों में अंगूठी, छल्ले

कंगन, पहुंची, बाजूबन्द नवरत्न पहिने हुये हैं ! मुख ऐसा चित्त चुराने वाला और मनोहर है कि शीतलता और मनोहरता को देख कर चन्द्रमा फीका पड़ गया है, चमक को देख कर सूर्य प्रकाश हीन होगया है, दमक को देख कर बिजली तेज हीन हो गई है, चिकचणता को देख कर नीलमणी रूखा पड़ गया है, लावण्यता को देख कर नवीन श्याम घन श्वेत हो गया है, प्रफुल्लता देख कर कमल सुकड़ गया है और सुन्दरता को देख कर गुलाब की आब जाती रही है . शिर पर मोर मुकुट है, मुकुट में मोती, चुन्नी, पन्नों की लड़ी लटक रही है, जहां तहां पुष्प गुंथे हुये हैं। माल पर केसर के तिलक की झलक मन को आकर्षण कर रही है, कानों में कुंडल और झुमके हैं झुमकों में रंग २ के पुष्पों के गुच्छे प्रिया जी ने अपने हाथ से बना कर पहिनाये हैं ! आंख रसीली, अलसाली हैं, आंखों में काजल लगा हुआ है ! झलकते हुये शोभायमान गोल कपोलों पर घुंघर वाली अलकें झुकी हुई हैं ओठों पर लाली पान की शोभा देरही है ! इस शोभा और शृंगार पर किसी की नजर न लग जाय उस नजर दृष्टि के बचाने के लिये यदि अगणित काम देवों की शोभा सुन्दरता, सजावट, मधुर्य और लावण्यता तथा करोड़ों ब्रह्माण्डोंका ऐश्वर्य और धन निछावर किया जाय तो उसकी उपमा यह होवे कि किसी चक्रवर्ती महाराजा पर एक कानी कौड़ी न्यछावर की गई हो अथवा कानी कौड़ी से भी कम हो। वाम भागमें श्रीराधिका महारानी जी शोभा, सुन्दरता, लावण्यता, माधुर्यता आदि शोभा के सब अंगों सहित विराजमान हैं ! यदि उनका श्रीनन्दनन्दन स्वामी से भेद कहा जाय तब तो:-'एक मेवा द्वितीयं ब्रह्म' 'नेह नानास्ति किंचिन' "अशब्द मस्पर्शमरूपमव्ययम्" "अस्थूलमनण्व ह्रस्वमदु र्घम्'

इत्यादि श्रुतियों से और गोपाल सहस्रनाम और गोलोक तापिन' इत्यादि उपनिषदों और अन्य शास्त्रों से विरोध पड़ता है और श्रीमहादेव के वचनानुसार ब्रह्म हत्या का पाप लगता है और यदि अभेद मान कर श्रीनन्दनन्दन स्वामी का एक रूप ही वर्णन किया जाय तो प्रिया प्रियतम के माधुर्य, शृंगार, छवि, शोभा और सुन्दरता इत्यादि नित्य विहार हैं, उनको नित्यता में विरोध आता है। तब सार सिद्धांत यहही निकलता है कि जो नन्दनन्दन स्वामी हैं. सोही राधिका महारानी हैं और जो राधिका महारानी हैं, सोही नन्दनन्दन स्वामी हैं, दोनों में रंचक भी भेद नहीं है। यदि कोई शंका करे कि फिर दो रूप क्यों धारण किये हैं तो उसका समाधान यह है कि भक्तों का मन अपने चरित्रों में लगा कर उनका उद्धार करने के हेतु और शृंगार और माधुर्य की उपासना प्रवृत्त करने के लिये भगवत् ने अपने दो रूप प्रकट किये हैं। माधुर्य निष्ठा यानी शृंगार निष्ठा प्रेमियों के मन का आकर्षण करके बहुत जल्दी एकाग्र कर देती है इसलिये यह निष्ठा सब निष्ठाओं में मुख्य और अवर्णीय है। इस निष्ठा के प्रताप से बहुत ही शीघ्र भगवत् की प्राप्ति होती है। रूप और नेत्रों का स्वाभाविक संयोग है इस कारण रूप में नेत्र सहज ही लग जाते हैं, नेत्र लग जाने से मन भी भगवत् के रूप में एकाग्र हो जाता है, इसलिये यह निष्ठा सब निष्ठाओं में सुगम है। प्रिया और प्रियतम दोनों एक सिंहासन पर विराजमान हैं, उनकी छटा अद्भुत है, श्रीकृष्ण का रंग श्याम है, श्रीराधिका जी गोरी हैं, दोनों के

गौरश्याम श्रीअंगों की सुन्दरता, निर्मल शोभा की झलक वस्त्राभूषणों की चमक दमक सहित परस्पर दोनों के मुखारविन्द पर पड़ती है, उस समय विवेक नहीं होता कि कौन श्रीप्रिया जी महारानि हैं और कौन श्रीकृष्ण स्वामी हैं ? इस पहिचान के करने में शिव, शारदा, और शेष की बुद्धि भी चकित हो जाती है, तो दूसरे की सामर्थ्य ही क्या है कि पहिचान सके। यह तो ऊपर का वृत्तान्त कहा के प्रिया प्रियतमके प्रेमका वृत्तांत यह है कि प्रियाजी के हृदय में प्रियतम और प्रियतम के हृदय में प्रियाजी निरंतर बसी होती हैं, क्षण भर भी अलग नहीं होतीं ! जब बाहर भीतर का यह वृत्तांत है तो फिर किस प्रकार कहा जाय कि प्रिया प्रियतम दो हैं ? दो हैं ही नहीं निश्चय एक हैं। जैसे शब्द और अर्थ एक हैं, जैसे जल और तरंग एक ही हैं, इसी प्रकार प्रिया और प्रियतम एक ही हैं। जैसे सर्प का कुंडल एक ही है, जैसे समाधिस्थ और समाधि से उत्थान हुये योगि के प्राणादिक एक ही हैं, इसी प्रकार श्रीकृष्ण और श्रीराधिका एक ही हैं। जैसे सूर्य से धूप और धूप से सूर्य न्यारा नहीं हैं किंतु दोनों एक हैं, इसी प्रकार श्याम और श्यामा एक ही हैं। जैसे अग्नि और उष्णता और जल और शीतला एक ही हैं, इसी प्रकार नन्दनन्दन और वृषभानुदुलारी एक ही हैं। ऐसी श्रीवृषभानु नन्दिनी साक्षात कृष्ण प्रिया, जिनकी चरण नख चन्द्रिका परम रसिकों का जीवन आधार हैं, जिनकी छवि संपूर्ण शोभा और शृंगार का कारण है, उनकी सुन्दरता, शोभा का और उनके शृंगार का वर्णन कोई किस प्रकार कर सके ? कोई नहीं कर सकता क्योंकि जितनी उपमायें है, सब प्राकृत स्त्रियों की शोभा वर्णन करने में लगादी गई हैं, कोई उपमा महारानी जी के योग्य रही ही नहीं है, फिर कोई कौनसी उपमा देकर प्रिया जी महारानी का वर्णन करें। किसी से प्रिया जी की उपमा नहीं दी जा सक्ती। ऐसी श्रीप्रियाजी महारानी श्रीकृष्ण स्वामी के वाम अंग में विराजमान हैं, उनकी शोभा और सुन्दरता से नन्दनन्दन की शोभा और सुन्दरता बढ गई है ! ललिता, विशाखा आदि सब सखी नाना प्रकार की सेवा की सामग्री लिये हुये अपनी अपनी सज धज से सजी हुई खड़ी हैं ! कोई सखी चमर हिला रही हैं, कोई छत्र लिये खड़ी हैं, कोई पंखा झल रही हैं ! संमुख सखी गण नृत्य कर रही हैं, वीणा, वेणु, वंशी, मृदंग, सारंगी, सितार, करताल आदि भांति २ के विचित्र बाजे और यंत्र, सब एक स्वरमें मिले हुये बज रहे हैं घुंघरू किंकिणी गति पर छमाछम छमक रही हैं, मधुर, अलाप, गान तान, उपज और मूर्च्छना की तरंगे उठ रही हैं, छः राग और छत्तीस रागिनियां सखा और सखी रूप से मूर्तिमान होकर सेवा में खड़ी हुई हैं। ऐसी शोभा, ऐसा समाज और ऐसा सुख जो परम रसिक भक्तों के हृदय में समाया रहता है, वह सब प्रत्यक्ष विराजमान है। एक परम भक्त के कान में मृदंग इस प्रकार कहता हुआ काना बाती कुर करता है:-

'श्रीमद्यशोदानन्दन के पद कमलों में जिन भाग्यहीन मनुष्यों की भक्ति नहीं है, और आभीर की कन्या के प्रिय गुण कथन करने में जिन रसिकों को अनुराग नहीं है और जिनके कान श्रीकृष्ण की ललित रस कथा आदर सहित नहीं सुनते हैं, कीर्तनस्थ मृदंग सर्वदा उनको 'धिक्तान्, धिक्तान्, धिगे-तान्' यानी उनको धिक्कार है, धिक्कार है, धिक्कार

है, ऐसा कहता है।

एक भक्त कहता है:-कु०-

जय जय नन्दकिशोरश्री, जय वृषभानु दुलारी।
भेद न जानत कहत नित, नेति नेति श्रुति चारि॥
नेति नेति श्रुति चारि, गावती पार न पावत।
लीला धाम, स्वरूप, नाम नित हरिजन गावत॥
सुन्दर रूप अनूप, शान्ति कारक हारक भय।
भोला! जय श्रीश्याम बोलत श्रीश्यामा की जय॥

दूसरा भक्त कहता है:-

### छप्पय

ब्रज बाला ब्रजचन्द, दिव्य सिंहासन राजत।
देखत रूप अनूप, काम रति कोटिन लाजत।
रमा रमापति दोउ, क्षीर सागर के मांही।
जाय छुपे सकुचाय, लाज वश निकरत नाहीं॥
भोला! युगल स्वरूप छवि मन के नयन निहार रे।
राधा राधा कान्तमय, देखि सकल संसार रे॥

तीसरा भक्त कहता है:-

### कुण्डली

गोरी राधा सुभग तनु, श्याम रंग घनश्याम।
आसन एक विराजते, अद्भुत रूप ललाम॥
अद्भुत रूप ललाम, देखि शारद सकुचाई।
दूंदे तीनों लोक, कहूं उपमा नहि पाई॥
जनु शोभा शृंगार, देह धरि सोहत जोड़ी।
भोला! कारे श्याम, राधिका रानी गोरी॥

चौथा भक्त कहता है:-

नट नागर दक्षिण दिशा, नागरि बायें अंग।
झलक परस्पर पड़ रही, भये एक ही रंग॥
भये एक ही रंग, भेद नहि देत दिखाई।
दो कहते वह दोष एक हू कहा न जाई॥
भोला! सुन सिद्धांत, संत मन परम उजागर।
कृष्ण लाड़ली जान, लाड़ली जी नट नागर।

---

# मतवाला साधक

[ ले० राम ]

उसके दो रूप देखे थे।

काला काली रात्रि थी! भयंकर थी! निष्ठुर थी! क्रूर थी! नन्हीं नन्हीं बून्दें बिखर रही थीं। उन्हीं बून्दों को अपने अञ्चल में समेटते हुये, बन्दीगृह के झरोखे से झांक कर मैंने उसका पहिला रूप देखा था!

वह नन्हा सा था। पुष्प से भी अधिक कोमल था। बड़ी बड़ी सुनहौने सी इधर से उधर तक फैली हुई आखें थीं। घन सा श्याम वर्ण था। उन्नत नासिका थी। सुडौल वदन था। वह अबोध था! मां की गोद में पड़ा वह झूल रहा था! हिलोरें ले रहा था! हंस रहा था! हाथ पांव मार रहा था!

उस समय वह शैशव की प्रति मूर्ति था! भोला था! अज्ञानी था! अबोध था!

× × ×

कालिन्दी का कूल था। शीतल पवन था। मैं कलकल निनाद करती कालन्दी में स्नान कर लौट रहा था। सामने ही शीतल सलिल अकेला नहीं, अनेकों सखाओं सहित बह रहा था।

हाथ में लाठी थी। मैले मैले कपड़े बदन पर थे। आगे गऊओं का समूह चुपचाप चला जा रहा था, उनके पीछे हाथ में लाठी लिये वह आरहा था, चन्ता रहित हो, मस्त हो। गेन्द, कपड़े की मोटी गेन्द, उसके दूसरे हाथ में थी।

उस समय वह रक्षक था! खिलाड़ी था! यमुना का लहरों के किनारे वह चला जा रहा था! अपना अनूठा खेल खेल रहा था!

× × ×

उसे फिर देखा!

वह वीर था! पराक्रमी था! साहसी था! नवयुवक था!

शरीर पर लंगोटा था। शेष शरीर नंगा था। शत्रुसे लड़ रहा था। मल्ल युद्ध हो रहा था। देखते ही देखते उसने रिपु की नस नस ढीली कर दी थी।

इसके बाद उसके हाथ खून से, रंगे देखे उनमें रक्त की मेंहदी लगी हुई थी। सामने ही मुकुट पहिने एक पुरुष वेश धारी राक्षस पड़ा था। उसके हाथ तथा उस राक्षस का देह उष्ण रक्त से सने हुए थे।

उस समय वह उग्र था! भयावना था! विचित्र था!

× × ×

गोपियां थीं! सुन्दर थीं! युवती थीं! एक दूसरे का हाथ पकड़ नृत्य कर रही थीं। वह बीच में खड़ा था! मुरली बजा रहा था। उसकी टेर सुना रहा था। उसके सिर पर मुकुट था। शरीर पर पीले पीले, पीत वस्त्र थे। सुनहरी सुनहरी वन पर रेखायें खिंची हुई थीं।

वह उस समय रसिक था, आकर्षित करने वाला था, मादक था, चित्त लुभाने वाला था।

आखों में हास्य था। नशा था, होठों पर मुसकराहट थी, हलका हलका गुलाबीपन था, कानों में कुण्डल थे, हाथों और होठों पर मुरली झूल रही थी! उस समय वह मुरली मनोहर था! सचित्र था!

× × ×

रंगभूमि थी, रणभूमि थी, वह खड़ा खड़ा कुछ कह रहा था-सुना रहा था। उसके ओष्ट हिल रहे थे। वह मग्न था।

उस समय वह उपदेशक था, कवि था, कलाकार था। नीतिज्ञ था, क्रिया कुशल था, योगिराज था, कर्म का उपासक था, गम्भीर था, प्रौढ था। बहुत सी विशेषताओं का पुञ्ज हो रहा था।

उसकी मीठी मीठी कविता सर्वत्र फैल रही थी। उसके सुन्दर सुंदर उपदेश सबको लाभ दे रहे थे। वह खड़ा खड़ा इठला रहा था, कह रहा था:- "जीवन अनित्य है, आत्मा अमर है, भय स्वल्पकालिक हैं।"

× × ×

इसके बाद उस मतवाले साधक को बहुत

काल तक न देखा।

सहस्रों वर्ष पीछे वह फिर दिखाई दिया। विचित्र हो, अनूठा हो, आश्चर्य चकित कर मुग्ध कर।

न कवि का रूप था, न कलाकार का रूप था, न रसिक का रूप था, न उपदेशक का रूप था, न खिलाड़ी का रूप था, न वीर का रूप था वह नूतन रूप में था, अनूठे रूप में था, कविता के रूप में था।

सहस्रों वर्ष पूर्व जहां उसने मुझे इतने रूप दिखाये थे, वहां ही उसने फिर दर्शन दिये-कविता के रूप में, अनोखेपन में।

वृक्ष भूमि में बैठा हुवा एक अन्धा भिखारी उसके दर्शन करा रहा था, उस कविता को बैठा रच रहा था, गा रहा था, झूम झूम कर, मस्त हो हो कर।

मैंने आंखें खोल लीं, मैं हंस पड़ा, इठला उठा, अपने साधक के इन रूपों को देख, एक प्रसन्न निश्वास मेरे मुंह से निकल पड़ी।

मैंने कहा-

"मतवाले साधक! तू अमर होगया! मिट कर अमिट होगया!"

# धर्मव्याख्या

[ले० श्री० पं० रेवाधर जी पाण्डेय]

धृति के दूसरे नाम धैर्य, धारणा, ध्यान योग, और तुष्टि अर्थात् सन्तोष हैं। धृति का धर्म प्रायः समस्त धर्मोंका मूल है। यहीकारण है कि मनुजी महाराज ने धर्म के दश लक्षणों में सबसे पहिला स्थान इसको दिया है। कमजोर अर्थात् पोली जमीन रेतीली भूमि पर प्रथम तो किसीका मकान बनना ही दुष्कर है यदि बनभी जाय तो वह थोड़े दिन चलता है परन्तु ठोस-दृढ़ पक्की भूमि पर जिनकी नीव रक्खी जाती है वह मकान एक प्रकारसे अटल बन जाते हैं। ठीक इसी प्रकार जब तक मनुष्य के हृदय की भूमि धृति धैर्य आदि गुणों से दृढ नहीं होती तब तक मनुष्य का कोई कार्य उसके उद्योग को सफल बनाने वाला नहीं हो सकता।

प्रारभ्यते न खलु विघ्न भयेन नीचैः।

विघ्नों के भय से कार्य को आरम्भ ही नहीं करते ऐसे नीच मनुष्य वही होंगे जिनके हृदयों को धृति के गुणों ने साहसी नहीं बनाया है। और:-

प्रारभ्य विघ्न विहता विरमन्तिमध्याः।

प्रारम्भ करके विघ्न आजाने पर अपने कार्य को बीच ही में छोड़ बैठने वाले मनुष्य वही हैं जिनके मन अभी तक धृति के अभाव से अधीर बने हुए हैं। परन्तु "विघ्नैपुनः पुनरपि प्रति हन्य-मानः। प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति॥ विघ्नपर विघ्न पड़ने पर भी प्रारम्भ किए हुए कार्य को कदापि न छोड़ने वाले वे ही निकलेंगे कि जिनके हृदयों को धृति के धर्म ने संक्रांत कर रक्खा है और जिनके मन इतने दृढ हो गये हैं कि उनको आपत्ति विचलित नहीं कर सकती कहा भी है।

चलन्तिगिरयः कामं युगान्त पवना हताः।
कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव धीराणां निश्चलं मनः॥

प्रलय की पवन से ताड़ित पर्वत भी चल विचल होते हैं परन्तु धीर पुरुषों का निश्चल मन क्लेश में भी चलायमान नहीं होता। एक समय महाराज युधिष्ठिर ने भीष्मपितामह से पूछा कि

बन्धुओं का नाश अथवा राज्य का नाश होने पर ऐसे भारी दुःख में मनुष्य का कल्याण किस से होता है ? भीष्मपितामह ने उत्तर दिया:-

पुत्रदारैः सुहृद्भिश्च वियुक्तस्यधनेन वा।
मग्नस्य व्यसने कृच्छ्रे धृतिः श्रेयकरी नृप ॥
धैर्येण युक्तं सततं शरीरं न विशीर्यते।
विशोकता सुखं धत्ते धत्तेचारोग्य मुत्तमम् ॥
आरोग्याच्च शरीरस्य सपुनर्विन्दते श्रियम् ॥

ऐसे ही किसी कवि का वचन है कि-

अंगन वेदी वसुधाकुल्या जलधिः स्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरुः कृत प्रतिज्ञस्य धीरस्य ॥

प्रतिज्ञा करने वाले धीर पुरुष को कार्य की सफलता के लिए, सारी पृथ्वी घर के आंगन के समान है और समुद्र पार करना तो मानो एक कृत्रिम नदी के है और पाताल लोक (जिसको नवीन परिव्राजक अमेरिका कहते हैं) अथवा नागलोक कुदरती स्थली की बराबर है और सुमेरु बांबी के सदृश है।

कान्ताकटाक्ष विशिखा न लुनन्ति यस्य।
चित्तं न निर्दहति कोप कृशानुतापः ॥
कर्षन्ति भूरि विषयाश्च न लोभ पाशाः।
लोकत्रयं जयति कृत्स्न मिदं स धीर ॥

जिसको स्त्री के कटाक्ष रूपी बाण नहीं छेदन करते हैं, तथा क्रोध रूपी अग्नि का ताप जिसके चित्त को नहीं जलाता है और जिसको लाभ रूपी बंधन विषयों में नहीं खींचते हैं वह धीर पुरुष तीनों लोकों को पूरी तरह से जीत लेता है।

जिस धृति में ऐसे विलक्षण गुण हैं और जिसका महत्व इतना बढ़ा चढ़ा हुआ है उस धृति के रूप को पूर्णतया जानने की इच्छा धर्म के प्रत्येक जिज्ञासु को होती है। ऐसी इच्छा को पूर्ण करने के लिए शास्त्रकारों ने धृति को विशेष रूप से समझाने की चेष्टा की है।

इष्ट वियोगेऽनिष्ट प्राप्तौ प्रचलित चित्तस्य यथापूर्व समस्थानं धृतिः ॥

इष्ट के वियोग होने पर अनिष्ट की प्राप्ति होने से चलायमान चित्त को स्थिर रखना धृति कहाता है। और भी एक स्थान पर लिखा है।

विषय प्रवणं चित्तं धृतिभ्रंगन्न शक्यते।
नियन्तु महिता दर्थाद्धृतिर्हि नियमात्मिका ॥

विषयों में व्याप्त चित्त बिना धृति के दुःखदायक पदार्थों में जाने से नहीं रुकता इसलिए धृति को नियम कहना चाहिए। अर्थात् जो शक्ति नियम बद्ध करके मनुष्य को धर्म के कार्यों में लगावे और अधर्म के कार्यों से बचावे उसे धृति कहते हैं। आज कल प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य भली प्रकार जानता है कि अमुक कार्य बुरा है परन्तु प्रेम होने के कारण वह कार्य मनुष्य के मन को अपनी ओर खींचता है और मनुष्य उसे अहित कारक समझता हुआ भी उसकी ओर खिंच जाता है। बहुत से लोग आत्मिक उन्नति के लिए अपनी कार्य प्रणाली के नियम बना लेते हैं। परन्तु प्रायः यह देखने में आता है कि एक समय आलस्य वश अथवा दूसरे किसी कारण से वे अपने नियमों के पालन से हट जाते हैं। यह एक प्रकार की निर्बलता है जिसके कारण चित्त एक कार्य में अफलोदय दृढ़ता के साथ नहीं लगेगा। चित्त की इस निर्बलता का नाम अधीरता अर्थात् अधृति है। जिन वीर पुरुषों में यह निर्बलता नहीं होती उनके सम्बन्ध में महाराज भर्तृहरि जी ने कहा है।

निंदन्तु नीति निपुणाः यदि वा स्तुवन्तु ।
लक्ष्मीः समा विशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरेवा ।
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

नीति शास्त्र के ज्ञाता चतुर पुरुष चाहे निन्दा करें अथवा स्तुति करें, लक्ष्मी आवे या इच्छाचारी चली जावे और आज ही मृत्यु हो अथवा युग के बाद पर धीर पुरुष अपना चरण न्याय के मार्ग से नहीं हटाते। यह शक्ति जो कि मनुष्य को अपने नियम में दृढ बनाये रखती है और किसी अवस्था में भी उसको विचलित नहीं होने देती धृति कहलाती है। क्योंकि यह शक्ति इष्ट कार्य अथवा इष्ट देव के साथ योग ( मेल ) कराती है। इसलिए इसे योग भी कहते हैं और अपने नियम में सदैव (कायम) धारण रखती है इसलिए यह धारण के नाम से प्रख्यात है। इस प्रकार धृतिमान् पुरुष बहुत बड़े सन्तोष के साथ अनेक दुःख और विघ्नों को सहता हुआ अपने धर्म पर आरूढ रहता है। इसलिए धृति को तुष्टि के नाम से भी पुकारते हैं। मनुष्य की प्रकृति के भेद से धृति के भी कई भेद हैं, मन की दृढ़ता भले कार्यों मे ही नहीं वरन बुरे कार्यों में भी देखने में आती है। दुष्कर्म करने वाले प्रायः अपने निन्दनीय कार्यों में ऐसी दृढ़ता से लगे रहते हैं कि किसी पूकार का भी उपदेश अथवा लोभ वा, भय उनको वहां से नहीं हटा सकता। सांसारिक धन्धों में फसे हुए लोग प्रति दिन हमको ऐसे नियम बद्ध और दृढता से कार्य करने वाले दीख पड़ते हैं कि उनको लाख आध्यात्मिक उपदेश दीजिए परन्तु उन पर इसका किञ्चित् मात्र पूभाव नहीं पड़ता और इनके अतिरिक्त ऐसे मनुष्य भी देखने में आते हैं कि जिन्होंने संसार के सम्पूर्ण झगड़ों को छोड़ दिया है और आध्यात्मिक भाव में ऐसे दृढ होगये हैं कि पुत्र की मृत्यु का शोक अथवा उनकी समस्तसम्पत्ति का नाश भी उनको अपने भाव से विचलित करने में असमर्थ है। वे सब पूकार की दृढता में धृति के ही स्वरूप हैं गीता में धृति को तीन भागों में बांटा है।

धृत्या यया धारयते मनः प्राणेंद्रिय क्रियाः ।
योगेनाऽव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्विकी ॥
यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥
यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥

हे पार्थ ! जिस अन्य विषय को धारण न करने वाली धृतिसे मन प्राण और इन्द्रियों की क्रिया शक्तिको रोका जाय वह सात्विकी धृति है। मैं करता हूं ऐसा अभिमान न रखता हुआ कल्याण की इच्छा करके मनुष्य जिस धृति के द्वारा धर्म, अर्थ और काम को धारण करता है वह राजसी धृति है। दुष्ट बुद्धि पुरुष जिस धृति की सहायता से स्वप्न, भय, शोक, विशाद और मद का कभी त्याग नहीं करता है, अर्थात् सदा इनमें आसक्त रहता है उसका नाम तामसी धृति है।

इन तीन पूकार कि धृतियों में जिस धृति से हमारा अभिपूाय है, और शास्त्रकारों ने पूशंसा की है वह सात्विकी धृति है।

यश्चप्राज्ञो नरस्तात सात्विकीं वृत्तिमास्थितः।
तस्यैश्वर्यञ्च धैर्यञ्च व्यवसायश्च कर्मसु ॥

जो मनुष्य ज्ञानवान हैं वे सात्विकी धृति को ही धारण करके धैर्य का साधन करते हैं और

निश्चयात्मक बुद्धि तथा दृढता को प्राप्त करते हुए सब प्रकार के ऐश्वर्य के भागी बनते हैं। सात्विकी धृति ही मनुष्य से धर्म के ऐसे २ बड़े कार्य करा देती है जो कि सामान्यतः देखने से असम्भव प्रतीत होते हैं।

राजा ताम्रध्वज ने अतिथिसत्कार के धर्म पालन करने के लिए प्रसन्नता पूर्वक आत्मस्वरूप पुत्र मयूरध्वज को अपने हाथों ही आरेसे चीर कर दो टुकड़े कर डाला। महाराजा शिबि ने एक कपोत की प्राण रक्षा के निमित्त अपने शरीर का सब मांस काट कर दे दिया। इसी प्रकार अद्वितीय धर्म कार्य महाराजा हरिश्चन्द्र, दधीचि इत्यादि के सम्बन्ध में प्रत्येक मनुष्य के गोचर हुए होंगे। इन सबका कारण इन महात्माओं के हृदय में सात्विकी धृति के प्रगाढ भाव का होना ही था। मनुष्य मात्र का कर्तव्य है कि वे इसी सात्विकी धृति को प्राप्त करने का उद्योग करें। सात्विकी धृति को प्राप्त करने के लिए मुख्य साधन ये हैं कि मनुष्य पहिले आहार को सात्विकी बनावें। सात्विकी आहार वे होते हैं जोकि शीघ्र पच सकें और दोषों को उत्पन्न न करें। इसमें अधिक कड़वे, खट्टे, तीक्ष्ण, दाह उत्पन्न करने वाले झूठे, बदबूदार तथा चित्त की वृत्ति को मलिन करने वाले पदार्थ खाना और प्रमाण से अधिक भोजन करना वर्जित है। दूसरा साधन सात्विक विचार है। मन में सदैव शुद्ध भाव रखना राग द्वेष का कल्मष हृदय में न आने देना, अध्यात्म शास्त्र का पढना पढाना, साधु समागम करना, छल, कपट, दम्भ, मात्सर्य, निन्दा तथा आत्मश्लाघा का त्यागना इत्यादि मनुष्य के चित्त को निर्मल कर देते हैं तीसरा साधन सात्विक व्यवहार है, सात्विक विचार के साथ जो कुछ भी व्यवहार किया जावेगा वह सात्विक ही होगा। नम्रता और प्रेम के साथ वर्तना, बड़ों की ओर आदर का भाव रखना, शुभ कार्यों में भाग लेना और परोपकार बुद्धि से प्रत्येक कार्य को करना इत्यादि सात्विक व्यवहार के उदाहरण हैं। उपर्युक्त तीनों साधन हमारे हृदय में एक प्रकार का बल उत्पन्न करेंगे जिसका कि नाम दूसरे शब्दों में धृति है।

# गोसाईं तुलसीदासजी के लिखित उदाहरण

( ले० श्रीमधुमंगल जी मिश्र बी. ए. )

गोसाईंजी की कविताओं में कथा वर्णन के अतिरिक्त साधारणतः ऐसे कुछ विषय पाये जाते हैं:-ईश विनय, प्रभुगुण-गान, भक्ति भाव प्रदर्शन, जीव प्रकृति, नैसर्गिक वर्णन तथा अवलोकन, उपमा, उदाहरण इत्यादि इत्यादि। इस लेख में गोसाईं जी की चम-

हकारिक योग्यता तथा फबते उदाहरणों का परिचय देने की चेष्टा करेंगे।

साधारण जनता की अपेक्षा कवि अधिक बुद्धिमान, खोजी, अवलोकन शील, तथा अध्ययन परायण होता है। ऐसा कहते हैं कि जल में उगने वाली बेंत के पत्तों का जैसा वर्णन कवि शेक्सपियर ने किया था वैसा लोगों को देख नहीं पड़ता था। उसे लोगों ने अशुद्ध ठहराया। चार्ल्स लैम्ब की कवि पर सविशेष भक्ति थी। उसने जलनट पर जाकर ध्यान पूर्वक अवलोकन किया और कवि के वर्णन को ठीक पाया। बात यह थी कि पत्तों का निचला भाग जल में प्रतिबिम्बित होता था और कवि ने प्रतिबिम्बत पत्तों का सच्चा वर्णन किया था। चूक थी समालोचकों की और लैम्ब ने उसे प्रमाणित कर कवि की कीर्तिरक्षा की। यों साधारण दर्शकों की अपेक्षा कवि की आंखें सविशेष अवलोकनशाली होती हैं।

गोसाईं जी का भी अवलोकन असाधारण और चमत्कारिक था वे बहुपाठी ही नहीं वरण स्मरण शील भी रहे होंगे कि यथा स्थान उपयुक्त बातें भिड़ा देते हैं। घाट के पत्थरों पर से होकर गिरते हुए जल को पकड़ कर मछली ताल से ऊपर चढ़ जाती हैं। साधारण दृष्टि से तो यह प्रत्यय या विश्वास नहीं होता कि गिरते जल के सहारे ऊपर कैसे चढ़ा जावे परन्तु बात सत्य है। यह कैसे संभव होता है मैं नहीं कह सकता। पूज्य पिताजी ने गोसाईंजी का वर्णन पढ कर मुझ से यह बताया था। एक दिन एक पक्के बंधे ताल के घाट पर वर्षा का पानी बह कर आरहा था मैंने अपनी आंखों देखा कि सचमुच छोटी २ मछलियां गिरते पानी के सहारे तीन २ वा चार २ सीढी तक चढ के कल्लोल करतीं थीं। जहां जल न था वहां न चढतीं थीं। केवल गिरती धार ही के स्थान पर चढ उतर रहीं थीं। गोसाईं जी का वह पद्य यहां दिया जाता है:-

रघुपति भक्ति करत कठिनाई॥
कहत सुगम करनी अपार जाने सोई जेहि बन आई।
जो जेहि कला कुशल ताकहँ सोइ सुलभ सदा सुखदायी॥
शफरी सनमुख जलप्रवाह सुरसरी बहै गजभारी।
ज्यों शर्करा मिलै सिकता महँ बलते न कोई बिलगावै॥
अति रसज्ञ सूक्ष्म पिपीलिका जिमि प्रयास ही पावै॥

गंगा में शफरी वा मछली जल प्रवाह के सन्मुख चली जाती हैं पर बलवान हाथी धारा के साथ बह जाता है रेत अथवा बालू में शक्कर मिल जावे तो उन्हें अलग करने के लिए बलवान मनुष्य आवश्यक नहीं होता। चींटी उन कणों को सहज में फिर से अलग २ बटोर लेती है।

मन में विचार आदिक क्रिया कैसे उत्पन्न होती और कार्य करती हैं यह तो मानस शास्त्र का विषय ठहरा। पर मनुष्य के हृदय में क्या क्या वा कैसे २ विचार उठते हैं वैसे विचार ३०० वर्ष पश्चात् अब भी हृदय में उठते हैं। उन्हें पाकर, चित्त उनकी वर्णन शक्ति द्वारा बोध कर, आप्यायित होता है उदाहरण दिया जाता है जिस पर ध्यान देना आवश्यक है।

यों मन कबहुं तो तुमहिं न लागो॥
ज्यों छल छाँड़ि स्वभाव निरन्तर रहत विषय अनुरागो।
ज्यों चितई परनारि सुने पातक प्रपंच घर घर के।
त्यों न साधु सुरसरि तरंग निर्मल गुण गण रघुवर के॥
ज्यों नासा सुगन्ध रस बस रसना षटरस रतिमानी।
राम प्रसाद माल जूटन लगि त्यों न ललकि ललचानी॥

चंदन चन्द्रवदनि भूषन पट ज्यों छह पांवर परसो।
त्यों रघुपति पद पदुम परस को तन पातकी न तरसो॥
ज्यों सब भव भांति कुदेव कुठाकुर सेए वपु बचन हिये हू।
त्यों न राम सुकृतज्ञ जे सकुचत सकृत प्रणाम किये हू॥
चंचल चरण लोन लगि लोलुप द्वार द्वार जग धाये।
राम सीय आश्रमन चलत क्यों भयें न श्रमित अभागे॥
सकल अंग पद विमुख नाथ मुख नाम की ओट लई है।
है तुलसिहि परतीति एक प्रभु मूरति कृपामयी है॥

बालक गुरुजनों को, विद्यार्थीगण पाठक को, सेवकगण बहुधा स्वामी को सांसारिक संसर्गों से जैसे परे मानते हैं वैसे ही साधारण जनता साधु महात्माओं को काम वासनाओं से परे मानती है और श्रीकृष्ण चैतन्य गौराङ्ग महाप्रभु आदि ऐसे हो भी गये हैं पर फिर भी क्या गुरुजन, क्या शिक्षक क्या धनी क्या अधिकारी क्या साधु, सभी सांसारिक प्रलोभनों से न चाहते भी व्यथित होते ही हैं और उनके चित्त की गति, वासनाओं की यातना साधारण जीवों से भिन्न नहीं होती। यह गोसाईं जी के दिये हुए पद्य से प्रकट होता है। जैसे शरीरधारी होने के कारण गोसाईं जी रोग बाहु पीड़ा आदि से विकल हुए थे वैसे कुवासनाओं से भी सताये ही होंगे। महात्मा का महत्व इसी में है कि उचित का समाधान करें और अनुचित से चित्त संवरण करें। गोसाईं जी इस पद्य में उदाहरणों की भरमार उपस्थित करते हैं, पर उनकी मानसिक सत्यता पर आश्चर्य होता है। साधारण जन इन विकारों में लिप्त होने पर भी स्वीकार नहीं करते अथवा शब्दों द्वारा कहते नहीं। पर साधु जन अपनी दुर्बलता स्वीकार करते लज्जित नहीं होते क्योंकि वे सत्य ही तो हैं। वे कहते हैं कि जिस प्रकार छल छोड़ सहज ही मन सांसारिक विषयों पर आप ही आप आकर्षित होता है वैसे भगवान् की ओर आकर्षित नहीं होता। वे सांसारिक विषय क्या हैं उनका वर्णन करते हैं। पराई स्त्री को देखने को, पराये दोष सुनने को मन, जैसे आप ही आप खिंच जाता है, वैसे साधु जन वा देवनदी गंगा जी के दर्शन को तथा भगवद्गुण गान सुनने को नहीं ललचता। जैसे सुगन्ध सूंघने की प्रबल इच्छा घ्राणेन्द्रिय को संतुष्ट करने के लिए और षट्रस के स्वाद लेने के लिये जिह्वा अहरती है वैसे ही भगवत् प्रसाद के स्वाद लेने के लिये जिह्वा नहीं ललचाती। जैसे शीतल सुखद स्पर्श वाले चन्दन तथा भूषण और वस्त्र के स्पर्श की हार्दिक अभिलाषा बलवती उदय होती है उसी प्रकार भगवत् के चरणारविन्द के स्पर्श के लिये आन्तरिक श्रद्धा नहीं उदय होती। नीच अभिमान में चूर अधिक लेकर थोड़ा देने वाले स्वामियों की जैसी सेवा मनसा वाचा कर्मणा की जाती है वैसी सेवा भगवत् की नहीं करते। वैसी सेवा की कौन कहे वे तो एक बार भी प्रणाम करने वाले का संकोच करते हैं भगवान् ने कहा है:-

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यः ददाम्येतन्मतं मम॥

अर्थात् जो एक बार भी कहता है कि मैं आपका हूं उसे सब पापों से छुटकारा देता हूं। पैर लालच के कारण जैसे द्वार द्वार थोड़ी सी प्राप्ति की आशा से घूमते हैं वैसे ही भगवान् के आश्रम को जाने को श्रम करने की इच्छा नहीं होती।

काव्य का अथवा पद्य का सौन्दर्य बढ़ाने के लिये विविध प्रकार की उपमा आदि अलंकार का

प्रयोग होता है अतः उपमा तथा उदाहरण तो भरे पड़े हैं। ऊपर के पद्य में उदाहरणों का बाहुल्य दिखाया है। अब आगे खींचा तानी से उदाहरण बैठाने का उदाहरण दिया जाता है। काशी की उपमा एक गौ से दी है तब कहते हैं।

गल कम्बल बरुणा बिभाति जनु मूल लसति सरितासी।
लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन कर्ण घंट घंटासी॥

बरुणा और अस्सी नदियों के गंगा से संगम स्थानों के बीच में वाराणसी वा काशी पुरी बसी है। काशी रूपी गौ को गल कम्बल बरुणा नदी है और उसकी पूंछ अस्सी नदी है। लोलार्क कुण्ड और त्रिलोचन मंदिर वा घाट उस गौ के लोचन हैं और कर्ण घण्टा गले में बंधे घंटे के समान हैं। ये उदाहरण अनुपयुक्त है। कर्ण घंटा के नाम में घण्टा शब्द आ जाने से उसे काशीरूपी गौ के गले के घण्टे से उपमा दे दी। फिर त्रिलोचन शब्द में लोचन शब्द का व्यवहार हुआ और लोलार्क शब्द में सूर्य का नाम आया बस इन्हें आंख की उपमा दे दी। गले में घंटा बांधा जाता है। गल कम्बल (गले के नीचे लटकता चमड़ा) यदि बरुणा है तो कर्ण घण्टा पास ही होना चाहिये। पर बरुणा से कर्ण घंटा एक कोस दूर होगा।

लोलार्क कुण्ड से ५०० गज के भीतर गंगा तट पर गोसाईं जी का आश्रम है। अस्सी नाले से ५०० गज की दूरी पर उनका स्थापित संकट मोचन हनुमान जी का मंदिर है। कर्ण घण्टा पर कथा सुनने कोढ़ी का रूप धर हनुमान जी आते थे। त्रिलोचन पर तथा गोपाल मंदिर में भी गोसाईं जी कुछ काल ठहरे थे। गोपाल मंदिर में बैठ कर उनने अपनी अंतिम पुस्तक विनय पत्रिका लिखी है ऐसा एक संगमर्मर पत्थर पर मंदिर की एक कोठरी पर अब भी लिखा है।

ऐसे ही चित्र कूट की प्रशंसा में श्रीकामता नाथ की टेकड़ी को कामद मणि कामता कल्पतरु कहा है। यहां काम शब्दों का अनुप्रास ही उपमा का कारण जान पड़ता है। फिर कल्पतरु से मिलान करने में तो कवर्ग ही का अनुप्रास शेष रह जाता है। फिर कामता नाथ जी के पर्वत की उपमा कल्प वृक्ष रूपी वृक्ष से देना बहुत कुछ उपयुक्त नहीं भासता है फिर भी कामद मणि, कल्पतरु और काम धेनु में कुछ समानता है उसे ही पकड़ा उदाहरण दे ही डाला।

यों ही दो एक अनुपयुक्त उपमा वा उदाहरण उनके दिये सैकड़ों फबते उदाहरणों के आगे लुप्त होजाते हैं। उपमाओं पर हृदय अप्यायित हो उठता है। संसार की असारता तथा उनसे बचने के लिये किये गये निष्फल निरर्थक उपाय कैसे उदाहरणों से हृदय पर अंकित किये गये हैं नीचे दिये पद्य में देखते ही बन पड़ते हैं।

माधव मोह फांस क्यों टूटे?
बाहिर कोटि उपाय करिय अभ्यन्तर ग्रन्थि न छूटै।
घृत पूरण कराह अन्तर्गत शशि प्रतिबिम्ब दिखावै।
ईंधन अगिन लगाइ कल्पशत औटत नास न पावै॥
तरु कोटर मँह बस बिहंग तरु काटे मरै न जैसे।
साधन करि अबिचार हीन मन शुद्ध होइ नहि तैसे॥
अन्तर मलिन बिषय मन अति तन पावन करिये पखारे।
मरइ न उरग अनेक जतन बल्मीक बिबिध बिधि मारे॥
तुलसिदास हरि गुरु करुणा बिनु बिमल बिबेक न होई।
बिनु बिबेक संसार घोर निधि पार न पावै कोई॥

अपूर्ण

# प्रार्थना

[ ले० प्रभूदत्त ब्रह्मचारी आश्रम ]

दीनानाथ दयाल कृपाल प्रभो !
सुनिये कर जोर करूं विनती ।
नहीं भजन ध्यान कछु किया प्रभो !
पर पाप किये हैं अनगिनती ॥ टेक ॥
जब गर्भाशय में आया था,
तब कष्ट बहुत मैं पाया था ।
तुमने यह कौल कराया था,
नहीं झूठ कहूं मैं एक रति ॥ १ ॥
जो हरदम भजन करे मेरा,
छुटकारा होवे तब तेरा ।
अब भव सागर में हुवा बसेरा,
गये छूट भजन नहीं होय गती ॥२॥
मूल सकल जग करता है,
पर कोई कोई भरता है ।
फिर अन्ध कूप में पड़ता है,
जब आय बसे मन में कुमती ॥ ३ ॥
भव सागर अति गहन बड़ा,
प्रभु गुरु चरणन में आन पड़ा ।
कबलौं सोवेगा होले खड़ा,
रोना नहीं सहना है विपती ॥ ३ ॥

---

# गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भक्ति अमान

[ ले० स्वामी आत्मानन्द जी ]

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥
ब्रह्मानंदं परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्ति ।
द्वंद्वातीतं गगन सदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥
एकं नित्यं विमल मचलं सर्वधी साक्षिभूतं ।
भावातीतं त्रिगुण रहितं सद्गुरुं तन्नमामि ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुःसाक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥
ध्यानमूलं गुरोःमूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्र मूलं गुरोः वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥

अभिमान त्याग कर गुरु के चरण कमलों की सेवा करना तीसरी भक्ति है ।

गुरु- गिरति अज्ञानं, गृणाति ( उपदिशति ) वा धर्म । अज्ञान को दूर करता अथवा जो धर्म का उपदेश देता है उसको गुरु कहते हैं । गु- अंधकार, रु- निरोध, अज्ञान रूप अंधकार को नाश करे वही गुरु है ।

जो सब से भारी यानी एक ठोस राशि के सदृश व्यापक, देश काल वस्तु के परिच्छेद से रहित, निरतिशय ज्ञान वाला, सर्वज्ञ, अविनाशी, अव्यय, अविकारी, सत् चित् आनंद स्वरूप, अस्ति भाति प्रियरूप, अवाङ्मनसगोचर, सर्वशक्तिमान्, सर्व-प्रकाशक, सर्वावभासक, अचल, अक्रिय, अच्युत, परिपूर्ण, ज्ञान स्वरूप, एक, नित्य, विमल, सर्वधीसाक्षी

रूप, भावातीत, त्रिगुणरहित, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव आदि का अन्तर्यामी, जिसके भयसे अग्नि, सूर्य, इंद्र, वायु, मृत्यु अपने अपने कार्य में प्रवृत्त हैं वही सबका परम गुरु है। जिस चेतन की सत्ता पाकर सर्व ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेंद्रिय, पंचप्राण मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार अपने कार्य में प्रवृत्त होते हैं, इसके बिना जड़ रहते हैं जो इनका साक्षी होकर ज्योंका त्यों यानी सम है वही गुरु है। जो सब भूतों में सम सत्ता से व्यापक है जिसका कोई न प्रिय है और न कोई अप्रिय है उदासीनवत् स्थित है वही गुरु है। जो सर्व को बाध करने पर यानी हटाते हटाते शेष रहता है, जो किसीके हटाये नहीं हटता वही गुरु है। जिससे मन, मनन करने की सामर्थ्य को प्राप्त होता है मन उसको नहीं जान सकता जो मन से भी पहिले जाने वाला है वही व्यापक गुरु है। जिससे बुद्धि, निश्चय करने की सामर्थ्य को प्राप्त होती है और जिस में बुद्धि जाकर व्याप्त हो जाती है यानी बोध स्वरूप ही होजाती है वही सर्व का गुरु है। जो सर्वप्रेमास्पद है जिसकी प्रीति से आत्मा संतुष्ट हो अविचल भाव को प्राप्त होता है, जिसकी सेवा करने से मन को परम शांति की प्राप्ति होती है, वही गुरु है। ब्रह्मानन्द स्वरूप, परम सुखका देने वाला, केवल ज्ञान मूर्ति, द्वंद्व से परे, आकाश के समान, जो तत्त्वमस्यादि वेद के महावाक्यों से लक्ष्य होने योग्य है वही गुरु है। आनंद स्वरूप आनंद करने वाला, प्रसन्न, निजबोध रूप, योगियों के राजा पूज्य, संसार रूपी रोग का वैद्य है वही गुरु है। हृदय कमल के कोष के मध्य में स्थित, सिंहासन पर विराजमान, दिव्य मूर्ति, इष्ट फल के देने वाला, सूर्यकला के समान प्रकाश वाला है वही गुरु है। जो नित्य शुद्ध आभास रहित, आकार रहित, माया रहित, नित्यबोध स्वरूप, चेतन आनंद रूप है वही गुरु है। यही सर्वोपरि गुरु है इससे कोई भी अधिक नहीं है, इससे अधिक कोई भी नहीं है। एक संत गंगा किनारे पर्ण कुटीमें रहते थे उनसे एक भावुक ने जाकर प्रश्न किया कि हे महाराज! श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी ने "गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भक्ति अमान" ऐसा कहा है और शास्त्रों के देखने से यही समझ में आता है, कि गुरु व्यापक, अनीह और अरूप हैं इस प्रकार के चिन्ह वाले की अभिमान त्याग कर चरण सेवा किस प्रकार बन सकती है।

इतना सुनकर संत बोले, हे भावुक, तैंने अति उत्तम प्रश्न किया है इसका उत्तर सावधान होकर श्रवण कर। अनीह व्यापक और अरूप ही साकार धारण करके शिष्य के कल्याणार्थ प्रगट होता है, वही गुरु रूप होकर शिष्य को उपदेश करता है इस कारण से गुरु के चरणों का सेवन बन सकता है। इस में श्रुति भी प्रमाण है।

द्वे रूपे वासुदेवस्य चलं चाचलमेव च।
चलं संन्यासिनो रूपं अचलं प्रतिमादिकम्॥

हे भावुक! मुमुक्षुता तभी प्राप्त होती है जब गुरु की शरण ली जाती है। यदि गुरु बिना कोई मनुष्य किसी विषय में निपुण होना चाहे तो नहीं हो सकता। जब सब व्यवहारिक कार्यों में गुरु की आवश्यकता है तब मन वाणी से अगोचर आत्म-तत्त्व का जानना बिना गुरु के किस प्रकार बन सके?

भावुकः भगवन्! मैंने बहुत से मनुष्यों से सुना है, कि जब वेद उपस्थित हैं और अन्य शास्त्र

भी उपस्थित हैं, हम उनको पढ़ सकते हैं और अर्थ भी समझ सकते हैं, तब ईश्वर के ज्ञान के लिये हम को दूसरे मनुष्य को गुरु करने की क्या आवश्यकता है ?

संत:- हे भावुक जिनका मस्तक अनेक प्रकार के भावों से भरा हुआ है, उन लोगों से पूछना चाहिये कि गुरु बिना तुम्हारा कोई भी कार्य आज तक हुआ है ? क्या बिना गुरु के ही तुम व्यवहारिक योग्य हो ? एक ही गुरु नहीं परन्तु व्यवहार के अनेक गुरु होचुके हैं और होते ही जावेंगे प्रत्येक हुनर तथा विद्या के गुरु होते ही रहते हैं। यदि तुम्हारे गुरु होते हुए भी तुमने गुरुको न माना तो तुम्हारी कृतघ्नता है। माता, पिता, भाई, स्नेही, शत्रु मित्र और सहवास में आने वाली प्रकृति की सभी कृतियां गुरु हैं। जब लौकिकमें ऐसा होता है तब तो परमार्थ आत्मज्ञान के निमित्त अवश्य श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु चाहिये। तुम शास्त्र पढे हो शास्त्र तुम्हारे सामने उपस्थित है परन्तु उसे खोलनेकी चाबी सद्गुरु के पास ही रहती है। शास्त्रों में भी ऐसा देखने में आता है की शास्त्र को गुरु से अध्ययन करे, यदि गुरु बिना शास्त्र से काम निकल सकता तो शास्त्रकार बीच में गुरु का आड़ क्यों लगाते ? वेद ग्रन्थकार जड़ हैं, तुम समझो या न समझो, अर्थ करो या न करो, वह न तो तुमको उपदेश दे सकता है, न रोक सकता है। जड़ रूप ग्रन्थ सद्गुरु नहीं हो सकता। जो चैतन्य स्वरूप तुम्हारी दृष्टि में शरीर वाला है और जिसमें वेद का रहस्य भरा हुआ है वही गुरु उपदेश देकर कृतार्थ कर सकता है। वेद शास्त्र समुद्र के जल के समान है जैसे समुद्र में से सीधा जल लेने से वृक्षों को जलाने वाला होता है और वही जल बादलों द्वारा वृक्षों की वृद्धि और अनेक औषधि और अन्नादि को उत्पन्न करता है जिससे प्राणियों का जीवन होता है इसी प्रकार वेद और शास्त्रों का सीधा ( मनमुखी ) अर्थ कर लेना अनर्थ का हेतु होता है और सद्गुरु द्वारा समझा हुआ अर्थ परम सुख स्वरूप, निज रूप विदेह कैवल्य का भागी होता है।

लोहे की भारी शिला चढने वाले को समुद्र में डुबो देती है परन्तु उसी से बना हुआ जहाज अनेक मनुष्योंको पार पहुंचाता है इसी प्रकार ग्रन्थाकार वेद लोहे की शिला हैं, उसी लोहे से बना हुआ जहाज रूप सद्गुरु है।

संखिया विष है उस के खाने से मनुष्य मर जाते हैं वहां संखिया सद्वैद्य रूपी गुरु के पास जाकर संस्कार यानी शोधन करने से शुद्ध हो जाता है और रोग, रोगी की अवस्था, बल, प्रमाण, देश, काल जान कर दिया जाता है तब अमृत का काम करके रोगी को निरोग करता है। वेद बिना गुरु ग्रहण करने से ज्ञान देने के बदले अज्ञान को दृढीभूत करने वाला होता है। बारम्बार मारने वाला होता है। वेद रहस्य क्षुरे की धारा की समान है अति तीक्ष्ण है। क्षुरे को किस कार्य में किस समय, किस स्थान पर, किस कार्य के निमित्त, किस प्रकार चलाना, ये गुरु से जाने बिना अनाड़ी मनुष्य उपयोग करे तो शिर हाथ के काटने के सिवाय और क्या कर सकता है ?

बन्दूक बिना गुरु द्वारा सीखे हुए चलाने से अपने ही प्राणों का घात करती है, और गुरु द्वारा सीखी हुई बन्दूक शत्रुओं को नाश करती है इसी प्रकार सद्गुरु द्वारा मिला हुआ वेदों का रहस्य दुःख

की निवृत्ति यानी काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओं का नाश करता है और परम पद रूपी परम सुख की प्राप्ति का हेतु होता है और अनादि अविद्या का नाशक होता है।

एक साहूकार बहुत धनवान् था संसार की समस्त वस्तु उसको प्राप्त थीं। या यों कहिये उसकी नजर, दौलत थी। जब मरने का समय आया तब उसने अनेक प्रकार के अमूल्य रत्न एक तहखाने में भरवा कर एक शिरे पर बांसी पहाड़ का पत्थर दूसरे सिरे पर पहाड़पुर पहाड़ का पत्थर लगवाया और अपने बही खाते में लिख दिया कि बांसी पहाड़पुर के मध्यमें अमूल्य रत्न हैं। कुछ काल पश्चात् साहूकारका देहान्त होगया। साहूकारका एक लड़का था वह बहुत समय तक सुख चैनसे कार्य करता रहा एक समय बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा और तमाम लेन देन मारा गया कुछ वसूल नहीं हुआ, तब तो इसने अपने बही खाते देखे तो, पिता के हाथ का लिखा हुआ बीजक मिला कि बांसी पहाड़पुर के बीच में अमूल्य रत्न हैं, यह निश्चय कर बांसी और पहाड़-पुर तक सब पृथ्वी खुदवाई परन्तु रत्न प्राप्त न हुए और समस्त धन खुदवाने की मजूरी में खर्च होजाने से बहुत दुःखी हुआ। दैववशात् साहूकार का मित्र लड़के के पास आया लड़के को दुःखी देख कर दुःखी होनेका कारण पूछा। लड़के ने समस्त वृत्तांत कहदिया। साहूकार के मित्रने कहा दुःखी मतहो,तू लिखे अनुसार सदुपयोग नहीं कर सका, इसमें इतना दुःख उठाना पड़ा। सुन मैं समझाता हूं कि तेरे घर में ही खजाना है, उसमें बांसी और पहाड़पुर पहाड़ का पत्थर दोनों शिरों पर लगा हुआ है, अब तू खुदवा वहां रत्न अवश्य मिलेंगे। लड़के ने दोनों पत्थर निकाल कर अमूल्य रत्नों को प्राप्त किया।

साहूकार रूपी ईश्वर है, बीजक रूपी वेद शास्त्र है, रागद्वेष रूपी दो पत्थर हैं। लड़का रूपी जीवात्मा है, आत्मा रूपी अमूल्य रत्न है, मित्र रूपी सद्गुरु है। बिना मित्र रूपी सद्गुरु के बताये अपने आप अत्यंत परिश्रम करने पर भी अमूल्य रत्नोंकी प्राप्ति नहीं हुई, इसी प्रकार वेद शास्त्र बीजक होते हुए भी बिना सद्गुरु के लक्ष्य कराये आत्मरूपी अमूल्य धन की प्राप्ति नहीं हो सकती! कहा भी है।

सब जग रोगियारे जाने सद्गुरु वैद्य न जाना।
जन्म मरण का रोग लगा है तृष्णा बादी खांसी।
आवागमन की डोर गले बिच पड़ी काल की फांसी॥
देखा देखी गुरु मुख हुआ किया न तत्व विचारा।
गुरु चेला दोनों के शिर में जम ठोके पैजारा॥
गुरु का शब्द सजीवन बूटी जो घिस अंग लगावै।
कहत कबीर सुनो भाई संतो फेर न योनी पावै॥

हरि मिलने का मारग प्यारे गुरु बिन हाथ न आवेगा॥
चाहे जितनी करले चतुराई रीता ही रह जावेगा।
पोथी पोथी बिन गुरु गम के पद पद मगज खिकावेगा॥
बीजक बांचे मिले न माया कोई भेदी भेद बतावेगा!
गुरु की कृपा होय जब गोविंद घर बैठे ही पावेगा॥
बिन गुरु ज्ञान भान के प्रगटे कभी न तिमिर नशावेगा।
सरस माधुरी मौज महल की सद्गुर तुरत करावेगा॥

हे भावुक, वेद शास्त्र रूपी तिजोरी है, और गुरु वाक्य रूपी चाबी है। वेद में सब कुछ है परन्तु सद्गुरु की चाबी बिना वेद रूपी तिजोरी खुल नहीं सक्ती और उसमें रक्खा हुआ आत्मा रूपी धन प्राप्त नहीं हो सकता। जिस शास्त्र में आत्मा का उपदेश है वही शास्त्र स्वयं गुरु की आवश्यकता

बताता है। शास्त्र तब सफल होता है जब उसको ब्रह्म निष्ठ श्रोत्रिय सद्गुरु द्वारा श्रवण करके मनन और निदिध्यासन किया जाता है। किसी किसी शुद्ध पात्र को श्रवण मात्र से भी बोध होजाता है।

शास्त्र में शब्द पढ़ा जाता है, अर्थ भी समझा जाता है परन्तु सद्गुरु के बताये बिना रहस्य समझ में नहीं आता चाहे पण्डित हो चतुर हो तर्क वितर्क में कुशल हो परन्तु शास्त्र को समझाने की चाबी सद्गुरु के पास ही रहती है। इसमें श्रुति प्रमाण है।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधतक्षुरस्य धारा
निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥

हे मनुष्यो! तुम उठो जागो और श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य को प्राप्त होकर (आत्मा) को जानो (ज्ञान) क्षुरा की तीक्ष्ण धार की तरह कठिन है और उसी को विद्वान् लोग दुर्गम मार्ग कहते हैं।

गुरु दो पुकार के कहे गये हैं श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ। शास्त्र जानने वाले को श्रोत्रिय और ब्रह्म जानने वाले को ब्रह्मनिष्ठ कहते हैं। श्रोत्रिय सद्गुरु नहीं है, ब्रह्मनिष्ठ ही सद्गुरु है, ब्रह्मनिष्ठता की विशेषता है। श्रोत्रिय गुरु से किसी का कल्याण नहीं होता, उसने स्वयं ही परब्रह्म को प्राप्त नहीं किया तो वह दूसरे को कैसे प्राप्त करा सकता है? वह स्वयं संसार रूपी समुद्रमें डूबरहा है! दूसरे को कैसे निकाल सकता है? श्रोत्रियता रहित ब्रह्मनिष्ठ भी प्रत्येक अधिकारी को ब्रह्म प्राप्ति नहीं करा सकता क्योंकि वह स्वयं शास्त्र वाक्य से अनभिज्ञ है, तो भी वह उत्तम अधिकारी, दृढ भक्ति वाले की मुक्ति करा सकता है। सब प्रकार के अधिकारियों को उपदेश देकर ब्रह्म प्राप्ति कराने की योग्यता वाला सद्गुरु श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ दोनों ही लक्षणों से युक्त होता है इसलिये वह उत्तम और प्रशस्त सद्गुरु है।

ब्रह्मपथ सद्गुरु बिना और कोई नहीं दिखा सकता। सद्गुरु बिना भक्ति का पूर्ण भाव दिखलाने वाला और कोई नहीं है। अनेक प्रकार की शंकाओं को मिटाने वाला एक गुरु देव ही है। गुरु बिना कोई ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। गुरु से सब कार्य होते हैं, सद्गति गुरु से ही होती है। लोक और वेद के मुख से यही बात सुनी जाती है। गुरु की महिमा अपरम्पार है, बड़े २ देवता भी गुरु के समान नहीं हैं, गुरु स्वयं ईश्वर स्वरूप हैं, ईश्वर ही नहीं ईश्वर से भी विशेष हैं। गुरु जो कर सकता है वह ईश्वर नहीं कर सकता। ईश्वर के कोप को गुरु शांत करा सकता है परन्तु गुरु के कोप को शांत कराने में ईश्वर भी असमर्थ है। परम ब्रह्म से भी गुरु विशेष है क्योंकि अज्ञान का विरोधी न होने से, सगुण न होने से अज्ञानियों का कल्याण नहीं कर सकता परन्तु सद्गुरु परम ब्रह्म स्वरूप होते हुए भी विशेष चैतन्य वाला और निर्गुण स्थिति रखते हुए भी उपदेश निमित्त सगुण भाव में है। जो गुरु को यथार्थ भाव से जान लेता है और अपने चित्त को गुरु के साथ मिला देता है, वह उसी समय शिष्यभाव को मिटा कर स्वयं गुरु ही होता है। जिस प्रकार बड़े उच्च तालाब का जल नलियों द्वारा बिना ही परिश्रम छोटे छोटे गड्ढों में स्वयं ही आजाता है कुछ प्रयत्न नहीं करना पड़ता इसी प्रकार मन रूपी नाली गुरु रूपी चैतन्य में लगाने वाला शिष्य बिना परिश्रम ही परिपूर्ण हो जाता है।

अपूर्ण

# राधे-श्याम

(ले० श्री० मदनगोपाल जी 'सिंहल')

भजोरे मन निस दिन राधे श्याम ।
वंशीवट के निकट यमुन तट बैठ के आठों याम ॥
जनपति, जगपति, कमला के पति पुरुषोत्तम अभिराम ।
राधावर, गिरधरचर, वंशीधारी पूरण काम ॥
भव सागर में जीवन नौका पड़ी न सूझे ठाम ।
पार उतारन का मांझी है श्याम प्रभु का नाम ॥

---

# महात्मा सच्चिदानन्द का उपदेश

## गतांक से आगे ।

( ले० भक्तरत्न श्री मथुराप्रसाद जी )

अच्छा प्रिय शिष्य ! अब शरणागति से आगे की बात सुनो, सावधान हो जाओ आधे श्लोक में हम तुम को भक्ति का तत्व समझाते हैं ।

तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा ।

उसका ही मैं हूं, यह तो शरणागति का सार हुआ जो हम भली प्रकार विस्तार से वर्णन कर चुके, भावुक भक्त ऐसा विचार प्रकट करते हैं कि शरणागत जीव के भरण पोषण आदि का भार शरण्य जो भगवान् हैं उन पर पड़ जाता है । यह अनुभूत भी है । एक लेखक पंडित ने इसका प्रत्यक्ष चमत्कार देखा है । स्वयं कृष्ण भगवान् ने प्रकट होकर अनुभव कराया है, और जब स्वामी को सेवक की रक्षा में कष्ट उठाना पड़े तो उच्च कोटिकी भक्ति नहीं रही । इससे ऊंचा दर्जा है "ममैवासौ" अर्थात् वोह मेरा ही है ।

सुखराम-श्रीमहाराज ! आधे श्लोक में आपने भक्तिके तीन प्रकार बतलाकर प्रथम प्रकार "तस्यैवाहं" दूसरा प्रकार "ममैवासौ" को उच्च कोटिका कहा यह दासकी समझ में नहीं आया । और गीता के लेखक को क्या चमत्कार हुआ सो कृपा करके विस्तार से आज्ञा कीजिये ।

महात्मा- पुत्र ! सुनो 'तस्यैवाहम्' का अर्थ तो तुम समझ ही गये मैं उसी का हूं या मैं उसी की शरण हूं । इसकी अपेक्षा 'ममैवासौ' अर्थात् वोह मेरा ही है इस कारण से ऊंची कोटि का है । जो भक्त भगवान् की शरण में आजाते हैं उनकी रक्षाका भार भगवान् पर पड़जाता है । जैसे मनुष्य अपना कोई पाला हुआ पशु गौ अश्व आदि किसी दूसरे को भेंट कर देता है तो उस पशु के भरण पोषण की चिंता उस भेंट के अंगीकार करने वाले को हो जाती है भेंट देने वाले को नहीं रहती ।

स्वयं भगवान् श्रीमुख से आज्ञा करते हैं कि-

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।

अर्थात् उन भक्तजनों का योग और क्षेम मैं करता हूं । इस गीता के वचन में एक लेखक को सन्देह हुआ कि 'वहाम्यहम्' अशुद्ध है 'ददाम्यहम् चाहिये क्योंकि वहामि का अर्थ है शिर पर बोझा लादकर पहुंचाना और ददामि का अर्थ है देना । अतः भगवान् भक्तोंको उनकी अभिलषित वस्तु देते हैं सिर पर लाद कर नहीं पहुंचाते । इस कारण

इस लेखक ने बहुत काल तक विचार करके 'वहाम्यहं' पर हड़ताल लगा कर उसकी जगह 'ददाम्यहं' बना दिया। उसका नियम यह था कि लिखाई के जो पैसे उसके हाथ आते उनका सौदा खरीद कर लेजाता तब रसोई बनती थी। उस दिन उसी विचार में कि 'वहामि' के स्थान में 'ददामि' होना चाहिये उसे अति विलम्ब होगया और कहीं से लिखाई की उजरत हाथ न लगी। इसी अन्तर में एक मनुष्य एक टोकरे में नाना प्रकार के पक्वान्न और चावल दाल आदि कच्ची रसोई का सामान सर पर लादे हुवे लेखक पंडित के घर पहुंचा ब्राह्मणी के सामने टोकरा रख कर बोला कि पंडित जी ने भेजा है। फिर उसने पंडितानी को अपनी छाती में लगा हुआ एक लम्बा घाव दिखला कर कहा कि तुम्हारे स्वामी बड़े निर्दयी हैं उन्होंने मुझ निरपराधी की छाती में छुरी मार दी है। इतना कह कर वो मनुष्य तो चल दिया। पंडितानी ने चावल दाल आदि लेकर चूल्हे पर चढा दिये। इतने में ही लेखक महाशय डरते हुवे घर जा पहुंचे और विचारने लगे आज कुछ मिला भी नहीं और विलम्ब भी होगया पंडितानी प्रतीक्षा करती होंगी। परन्तु देखा क्या कि कई प्रकार की मिठाई रक्खी हुई हैं और चूल्हे पर रसोई चढी है। ब्राह्मणी ने चकित होकर पूछा यह सामग्री कहां से आई कौन लाया? तो वो झुंझलाकर बोली कि आज क्या भंग पी है, मतवाले होरहे हो, आपने ही तो यह सामग्री भेजी अभी टोकरे में एक गरीब सा मनुष्य दे गया है और तुम बड़े निर्दयी हो उस बेचारे मजूर के छातीमें छुरी मारदी ऐसा क्यों किया?

स्त्री से ऐसा सुनते ही पंडित के होश उड़गये सोचने लगा क्या बात है न मैंने यह उपस्कर भेजा, न किसी के छुरी मारी। वह आश्चर्य में डूब कर अपने भजन के एकान्त स्थान में जाकर चिन्तामग्न हो गया, कुछ तंद्रासी छागई, थोड़ा काल बीतने पर देखता है कि त्रिभुवन स्वामी, छविललामी, अभिरामी, अन्तर्यामी, परम मनोहर, श्याम सुंदर, नटवर गिरिधारी, कुंजविहारी, सामने खड़े हैं। कोटि सूर्य का प्रकाश जिसके आगे मंद है ऐसा तेजस्वी मुखारविन्द जिस पर मधुरी मुसकान, वो रंगीली सजीली नोकीलीशान, प्यारी आन बान, ऐसी अपूर्व झांकी पाय शरीर पुलकायमान होगया। कुछ न सूझी, चरण कमलों में साष्टांग दंडवत करके आंसू बहाने लगा। श्रीकरुणामय भक्तवत्सल स्वामी ने श्रीहस्तों से उसे उठाया यह कुछ विनती करना चाहता था परन्तु कंठ गद्गद होने से कुछ न कह सका। श्रीमुख से आज्ञा हुई कि पंडित चिन्ता क्यों कर रहा है। देख वह टोकरा लाने वाला मजूर मैं ही हूं तूने मेरे वचन पर हरताल नहीं लगाई मेरी छाती में छुरी मारी। अरे. मैं भक्तों के लिये क्या क्या नहीं करता! उस श्लोक में 'वहामि' प्रयोग ही शुद्ध है। बस इतना कह कर अलक्षित हो गये। पंडित अपनी मूर्खता पर पछताया और 'ददामि' की जगह 'वहामि' शब्द उसने तत्काल बना दिया।

इस दृष्टान्त तथा अन्य भक्तों के जीवन चरित्रों से भली प्रकार सिद्ध होता है कि भगवान् अपनी शरण में आये हुये भक्तों के कष्ट निवृत्त करने में स्वयं नाना प्रकार के श्रम उठाते हैं और प्रीति की रीति यह है कि अपने प्यारे को कोई कष्ट न दिया जाय, अपने शरीर पर कैसा ही संकट आ पड़े प्यारे को उससे बचावे और जहां तक बन

पड़े अपने प्यारे इष्ट की सेवा करे इसलिये 'ममैवांऽशो' यह दूसरा प्रकार भक्ति का श्रेष्ठ है अर्थात् प्रभु के साथ सम्बन्ध स्थिर करके यह भाव दृढ़ कर लिया जाय कि वह मेरे स्वामी हैं, मैं सेवक हूं, या हो पिता मैं पुत्र, या हो पुत्र मैं पिता, अथवा वे मेरे सखा, या सखी, या स्वामिनी, मुख्य पांच भावों में से कोई एक भाव दृढ़ करके उनकी सेवा में तत्पर रहना और अपने प्रारब्ध कर्म के फल भोग में जो कुछ आपत्ति आजाय शरीर को कैसी ही व्यथा, पीड़ा हो उसे सहन करके कभी प्रभु से रक्षा की इच्छा न रक्खे। प्रेमी भक्त कहता है प्रभो! मेरी प्रारब्ध के भोग में मुझे चाहे जितना दुःख शरीर को हो, और अपने कर्म फल भोगार्थ विष्ठा का कीड़ा बन कर नरक का घोर संकट सहूं मैं आप को श्रम देना नहीं चाहता।

नाऽहंवन्दे तवचरणयोर्द्वन्दमद्वन्द्व हेतो-
र्कुम्भीपाकं गुरुमपि हरेनारकं नापनेतुम्।

आप से तो इतनी ही प्रार्थना है कि मेरी चित्तवृत्ति आप के चरणारविन्द से न हटे ऐसी मेरी रति बनी रहे। मैं पातकों की राशि यह भी नहीं चाहता कि आप इस अधम महामलिन को दर्शन तक देने का कष्ट उठायें।

अर्जुन को कुछ गर्व हुवा कि मैं भगवान् का प्रेमी भक्त हूं इसी कारण भगवान मुझ पर इतनी कृपा करते हैं कि मेरा रथ हांकने का कार्य स्वयं करते हैं प्रभु। गर्व प्रहारी हैं ही, अर्जुन को साथ ले कर साधु वेषमें भ्रमण को निकले बहुत दूर जंगल में जा पहुंचे, अर्जुन को प्यास लगी उस निर्जन वन में कुछ दूर पर एक झोंपड़ी दृष्टि आई, भगवान् अर्जुन सहित पधारे, देखते क्या हैं एक साधु धूनी लगाये तप रहा है और उस के आश्रम में तीन नंगी तलवारें लटक रही हैं, अर्जुन पानी पीना तो भूल गया आश्चर्ययुक्त होकर पूछने लगा कि साधु के स्थान में शस्त्रों का क्या काम? साधु ने कहा आप लोग अतिथि हैं, विराजिये जल पान कीजिये, इस विषय में आप को क्या प्रयोजन? अर्जुन बहुत आग्रह करने लगा तब साधु ने कहा कि बाबा यह तीन तलवारें मैंने तीन शरीरों के लिये रख छोड़ी हैं वह मिल जांय तो अपने मन की निकालूं। फिर अर्जुन के हट करने पर उन शरीरों का नाम बताया कि प्रह्लाद १, सुग्रीव २, अर्जुन ३, यह सुनकर अर्जुन बहुत घबराया कि मेरे लिये भी एक तलवार क्यों? मैंने इस का क्या अपराध किया है। साधु से विनय पूर्वक पूछा कि महाराज! इतनी कृपा और कीजिये कि प्रह्लाद जैसे परम भागवत् के साथ आप का वैर क्यों? और सुग्रीव तथा अर्जुन ने आप का क्या अपकार किया है? साधु बोला मेरा तो किसी ने भी कुछ नहीं किया परन्तु हैं तीनों अपराधी, ऐसा प्रह्लाद अपने को प्रेमी होने का दावा करता है क्या प्रेमी का यह कर्तव्य हो सकता है कि कोई दुष्ट और उसके प्यारे को मारने को शस्त्र लिये खड़ा हो और पूछ रहा हो कि बता तेरा वो प्यारा इष्ट कहां है मैं उसे अभी मारूंगा, और वह उंगली के इशारे से बतावे कि यहां है प्रेमी जो वास्तविक प्रेम रखता होगा कभी अपने प्यारे का पता न देगा चाहे अपने प्राण जाते रहें।

उसने हिरण्यकशिपु अपने पिता को अपने प्यारे हरि का पता स्तंभ में देकर कह दिया कि इस में हैं, वोह प्रेमी कैसा, उसका दावा प्रेमी होने का सर्वथा मिथ्या है, इसी कारण वो वध के

योग्य है, सुग्रीव जानता था कि बालि के सामने जो आजाय उस का आधा बल बालि के शरीर में चला जाता है फिर भी श्रीरघुवीर रामचन्द्र महाराज को उसने अपने स्वार्थ के लिये बालि से लड़ने भेज दिया परिणाम यह हुवा कि श्रीरघुनाथ जी को वृक्ष की आड़ लेनी पड़ी क्या सच्चे मित्र का यह धर्म हो सकता है ? अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपना रथवान बनाया जिससे सारे वीरोंके बाणोंका आघात भगवान् के शरीर पर हुवा, फिर भी वो प्रेमी होने का दावा रखता है।

साधु की क्रोध पूर्ण बात सुनकर अर्जुन अपने मन में बड़ा भारी लज्जित होकर भगवान् से बोला कि महाराज ! यह साधु बड़े उच्च कोटि के प्रेमी प्रतीत होते हैं, अब चलिये। दोनों चले आये और मार्गमें अर्जुन ने भगवान् से कहा कि यदि इस साधु को विदित हो जाता कि यही अर्जुन है तो अभी मुझे मार ही देता, यह सत्य कहता है मुझ से बड़ा अपराध हुवा और प्रेम की मर्यादा से मेरा आचरण वास्तव में विपरीत ही हुआ। भगवान ने हंसकर टाल दिया. नितान्त प्रेमी को प्यारे कष्ट असह्य होता है प्रत्युत निज स्वार्थ के लिये प्रियतमको भ्रम देना सर्वथा प्रीति रीति के विरुद्ध ही है और जब यह भाव चित्त में दृढ हो जाय कि वह मेरा स्वामी या मित्र या पुत्र है तो उसे सुख पहुंचाना ही मुख्य कर्तव्य रह जाता है।

देखो वल्लभ कुल के वैष्णव पुत्र भाव रख कर भगवत् सेवा परायण होकर कैसे शुद्ध भाव से सेवा करते हैं। शीत कालमें शीघ्र शयन कराकर देर से उत्थापन कराते हैं कि लाला बालक हैं कहीं सर्दी न लग जाय, मंदिर की देहली ऊंची नहीं रखते कि लाला लुढक न जाय, यह माधुर्य कैसा आनन्द दायक है। ईश्वर भावमें ऐसा सुख नहीं है और जब उस के साथ ऐसा सम्बन्ध जुड़ जाता है तो प्रभु उस के वश में आजाते हैं जैसे पतिव्रता स्त्री सेवा से स्वामी को अपने आधीन कर लेती है। (अपूर्ण)

---

# भजन

काया का पिंजरा डोले एक सांस का पंछी बोले ॥
तन नगरी में मन मंदिर परमात्मा जिसके अन्दर।
दो नैन हैं पाक समुंदर तू पापी पाप को धोले ॥१॥
आने की शहादत जाना फिर जाने से क्यों घबराना।
यह दुनियां मुसाफिर खाना उठ जाग जगत् मैया बोले ॥
मां बाप पत्नी पत्नीका दो दिन का साथ सभी का।
यह रिश्ता जीते जी का. तू पापी पाप क्यों तोले ॥२

२

तुम्हें नाथ दर्शन दिखाना पड़ेगा।
गिरा देश फिर से उठाना पड़ेगा ॥ टेक ॥
हुवा भाई भाई का दुश्मन यहां पर,
हमें प्रेम प्याला पिलाना पड़ेगा ॥
बन्धे एक धागे में हिन्दू ये जाति,
इन्हें ज्ञान गीता बताना पड़ेगा ॥
पड़ा नींद में सो रहा सारा भारत,
प्रभु आप को आ जगाना पड़ेगा ॥
अगर आप अवतार लेकर पधारो,
तो फिर धर्म का डंका बजाना पड़ेगा ॥

३

मैं उनके दर्श की प्यासी ॥ टेक ॥
जिनका ऋषि मुनि ध्यान धरत हैं योगी योगाभ्यासी ॥१
जिनको कहते अजर अशोकी, आश्रय है जिनके त्रिलोकी
न वह जन्मे न वह मरे, अकाल पुरुष अविनाशी ॥२
अभेद अच्छेद अनंत अवर्ण, है अक्षर और अनादि।
अचल अमूर्त और अनुपम, प्रभु सर्व निवासी ॥३
अतुल बल जाका अटल राज है, सृष्टि सकल है दासी।
अमीचंद जिनसे होत प्रकाशक, रवि शशि अग्नि प्रकाशी

४

अब हम अचल ब्रह्म सुख राशी ॥टेक ॥
अलख निरंजन रूप हमारो, सकल विश्व घर वासी।
सतचित आनन्द रहत निरंतर; नाम रूप प्रकाशी ॥
दृष्टा दर्शन दृश्य त्रिपुटी, भोग्य भोक्ता भोग विलासी
स्वयं साक्षी शिवरूप निरंतर, विश्व रूप कैलाशी ॥
ब्रह्म वृत्ति वनिता उर अपनी, रहत निरंतर पासी।
रिद्धि सिद्धि दोऊ शक्ति हमारी, श्रीकमला निजदासी ॥
सोहमस्मि इति रूप हमारो, दिव्य प्रणव धनु रासी।
यह कमान मन बाण छांड़ छल, तत्व स्वरूप लय रासी ॥
निर्विकल्प निर्लेप एक रस मय स्वरूप अविनाशी।
देव निरंजन भव दुःख भंजन, प्रज्ञा पार विलासी ॥५

५

जिन्दा रह कर या मर मिट कर,
हम तुम से मिलेंगे कभी न कभी ॥ टेक ॥
आखिर हम आंखों वाले हैं,
तुम्हें देख लेंगे कहीं न कहीं।
लाखों ही तुम पर मरते हैं,
हम तेरे प्रेम का भरते हैं ॥
जो सौ सौ इरादे करते हैं,
एक बार मिलेंगे कभी न कभी।
परदे का न होगा नाम कहीं,
बन जायेंगे बिगड़े काम सभी ॥
तुम बात करोगे कहीं न कहीं,
हम बोल पड़ेंगे कहीं न कहीं।
काशी न सही मथुरा में सही,
काबा न सही बुतखाने सही ॥
गर हम जो सच्चे आशिक हैं,
तुम्हें ढूंढ लेंगे कहीं न कहीं।
आफत देखी और गम देखा,
गंगा देखी जम जम देखा ॥
रामा जब तुम हम से मिलते नहीं,
हम डूब मरेंगे कहीं न कहीं।
दाना न सही नादान सही,
और अमीरी न सही तो फकीरी सही
जिंदा रह कर या मर मिट कर,
तेरे दर्शन होंगे कहीं न कहीं ॥

६

हम तो तेरे मस्ताने हैं हम जेर जबर को क्या जाने ॥
हम रहने वाले जंगल के बस्ती की कदर को क्या जाने।
जो नार पिया घर जाय बसी गुड़ियों के खेल को क्या जाने
यह रंग जो तेरी माया का भोले जीवों का फंसाता है ॥
हम रंगे हुये तेरे रंग में हैं माया के रंग को क्या जाने ॥२
वेदों का हमको ज्ञान नहीं तू आता हमारे ध्यान नहीं।
जब नाम तेरा समदर्शी है अपने से जुदा तुम्हें क्या जाने

७

जब प्रेम का डंका बजा दिया मन मोहन वंशी वारेने।
मृतकों में जीवन जगा दिया मनमोहन वंशी वारेने ॥
अज्ञान अंधेरी काली थी मुश्किल होना रखवाली थी।
सोतेसे हमको जगा दिया मन मोहन वंशी वारेने ?

गीता उत्तम पुस्तक रच कर, भर दिये प्रेम मोहक मंतर
अर्जुन को निर्भय बना दिया मन मोहन वंशी वारे ने
दुःशासन शकुनिदुर्योधन, करना चाहें द्रौपदी नगन।
बस बसन उसी दम बढ़ा दिया मन मोहन वंशीवारे ने
पल्टनें खड़ी थी लड़ने को, कट कट कर रण में अड़ने को
तब बिगुल विजय का बजा दिया मन मोहन वंशी वारे ने
दुर्योद्ध महारथी मारे छूटे थे खूं के फव्वारे।
अर्जुन का झंडा खड़ा किया मनमोहन वंशी वारे ने॥
अबगीवें दुःखसे चिल्लाती सुनकर दुःख से फटती छाती
है यदा २ संकेत किया मन मोहन वंशी वारे ने ॥६॥
गोपाल कृष्ण फिर आवेंगे बधिकों से गौ छुड़ावेंगे।
जिस तरह कंस विध्वंस किया मन मोहन वंशी वारे ने

८

ओढी राम रजाई जग जूड़ी चढ आई॥
शील सूत कतवाय बुनाई,
धर्म के बांधी पै धुलवाई।
राम नाम रंग में रंगवाई, अब कारीगर कर्तार,
आप छीपी ने कतवाई॥ १॥
रात प्रीत की रुई भराई,
धीरज धुनिया पै धुनवाई॥
वह विवेक बखिया करवाई,
सत की सुई प्रेमकी पेचक मगजी मोक्ष लगाई॥
लोक लाज की लहर डराई,
झूट को झाल परयो नहीं आई,
जूड़ी गई भई गरमाई,
घासीराम ने ऐसी ओढी पूरण पदवी पाई॥

९

आवैगो कि नाहिं कान्हा गयो द्वारका न्हायवे॥
निर्मल जल जमुना जी को छोड़यो,
समन्दर को खारो पानो भावैगो कि नाहिं॥
माखन मिश्री के भोजन छोड़े,
द्वारका को दार भात भावैगो कि नाहिं॥१॥
सोलह सहस्र गोपिका छोड़ी,
कुब्जा के संग सुहावैगो कि नाहिं॥ ३॥
चन्द्रसखी भज बाल कृष्ण छवि,
कुञ्जन में रास मंचावैगो कि नाहिं॥ ४॥

## स्वामी आत्मानन्द जी के लेख पर एक जिज्ञासु बुद्धि से शंका।

भक्ति नामक पत्र के चतुर्थ वर्ष की तीसरी संख्या मार्गशीर्षमास के अंक ३ पृष्ठ १७७ में जो लेख (दूसरि रति मम कथा प्रसंगा) इस हैडिंग से प्रकाशित हुआ है उसमें लिखा गया है कि भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामजी ने जो शबरी के प्रति उपदेश में आज्ञा की है कि (दूसरि रति मम कथा प्रसंगा] मुझ आत्माराम की कथा में प्रेम करना। यहां भगवान श्रीरामचन्द्र जी ने अपने स्थूल शरीर का बाध करके अपने निज स्वरूप अन्तरात्मा अव्यक्त अनीह अरूप अनाम अच्युत अविकारी आदि को ही कहा है। स्थूल शरीर अन्नमय कोश से आनंदमय कोश तक विकारी है उस विकारी स्थूल शरीर के लिये मम शब्द का प्रयोग नहीं होसकता। इत्यादि।

उक्त कथन का तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि भगवान् श्रीराम अथवा श्रीकृष्ण का स्थूल शरीर पंचमहाभूत का पुतला जैसा और देहधारी मनुष्यों का है वैसा ही विकार वाला और विनाशी माना गया है और जिस प्रकार देहधारी मात्र नाम रूप सब माया की सृष्टि मिथ्या और जन्म मरण वाली अद्वैत वाद में कल्पित मानी गई है वैसे ही भगवान् श्रीराम श्रीकृष्ण के शरीर नश्वर माया कल्पित ठैराये गये हैं। परंतु चारों वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य-श्रीनिम्बार्क स्वामी-श्रीविष्णु स्वामी-श्रीरामानुज स्वामी श्रीमाधवाचारी जी का सिद्धान्त इस मतके सर्वथा विरुद्ध है। और अपने सिद्धान्त की पुष्टिमें बड़े प्रबल

प्रमाण और युक्तियां प्रकट करके भगवान् राम, कृष्ण के शरीर, दिव्य अलौकिक अमायक माने हैं।

(१) "पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि" इस श्रुति से सिद्ध होता है कि माया का सारा प्रसार चतुर्थ अंश में है और तीन भाग जो दिव्य अमायक अमृत रूप विभूति है-वो नित्य-अकल्पित है-भगवान के श्री अंग दिव्य और अमायक हैं।

यदि इनका शरीर पंचभौतिक होता तो जन्म के समय श्री रघुवर रामचन्द्र जी ने श्रीकौशल्या माता जी को तथा श्रीयदुवर कृष्णचन्द्रजी ने वसुदेव देवकी जी को चतुर्भुज रूप से शंख चक्र गदा पद्म धारण किये हुवे दर्शन दिये और उपदेश किया ऐसा माया रचित भौतिक शरीर से कब संभव हो सकता है:-

(२) श्रीमद्भागवत से सिद्ध होता है कि ब्रह्माजी ने जब गोपबालकों तथा बछड़ों को हरण कर लिया उस समय एक वर्ष तक श्रीकृष्ण महाराज खुद गोप बालकों तथा बछड़ों का रूप धारण करके रहे और रास में अनेक स्वरूप प्रकट किये तथा नारद जी ने द्वारका में जाकर सोलह हजार महलों में श्रीभगवान् को पृथक् २ कार्य करते पाया। इन चरित्रों से ज्ञात होता है कि आप में अलौकिक शक्ति नाना स्वरूप धारण करने की थी। भौतिक और माया रचित शरीर नहीं थे।

(३) अर्जुन को आपने उसी शरीर में विश्व रूप दिखलाया पंच महाभूत के शरीर में ऐसी सामर्थ्य नहीं हो सकती।

(४) भगवद्गीता में आपने आज्ञा की है कि "अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितं। परं भावमजानन्तो" इत्यादि वचनों से स्पष्ट सिद्ध होगया कि आपका मानुषी शरीर भौतिक नहीं था। और उनको मानुषी शरीर कहना और समझना आपका अपमान करना है। फिर भी महात्मा जी का यह लिखना कि भगवान् का स्थूल शरीर नश्वर और अध्येय था। उनकी अन्तरात्मा का ध्यान स्मरण करने योग्य है स्थूल शरीर इस वाक्य में अभिप्रेत नहीं है कब मान्य हो सकता है।

बारवीं अध्याय गीता में अर्जुन ने पूछा कि "एवं सतत युक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते। ये चाप्यक्षर मव्यक्तं तेषां के योग वित्तमाः" इसका प्रयोजन यही था कि आप शरीरधारी के भक्त श्रेष्ठ हैं अथवा आपके अन्तरात्मा अव्यक्त निराकार की उपासना श्रेष्ठ है तब आपने उत्तर दिया है कि।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्य युक्ता उपासते।
श्रद्धया परया पेतास्ते मे युक्ततमाः मताः॥
ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥
सन्नियम्येन्द्रयग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥
क्लेशोधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त चेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥

इस श्रीभगवान् के वचन ने स्पष्ट कर दिया कि भगवान् के दो स्वरूप एक साकार व्यक्त जिसे स्थूल भी कहसकते हैं और दूसरा निराकार अव्यक्त। अर्जुन ने प्रश्न किया था कि आपके व्यक्त शरीर की उपासना श्रेष्ठ है या अव्यक्त निराकार की। आपने उत्तर दिया कि व्यक्त देह की उपासना उत्तम और सुगम है। अव्यक्त की उपासना में क्लेश अधिक है।

अब जिन महाशय ने श्रीरघुनाथजी के वचन का अर्थ स्थूल शरीरको भौतिक और नश्वर ठैराकर निराकार को ध्येय करार दिया है। उनकी सेवा में मेरी सविनय प्रार्थना है कि ऊपर निवेदन किये हुवे इस तुच्छ जन के प्रमाण पर गंभीर दृष्टि डालकर भक्ति पत्रम ही अपना आशय प्रकट करें कि जिससे केवल मेरा ही नहीं प्रत्युत सब वैष्णवों का समाधान होजाय और यह भ्रम न रहे कि भगवान् के साकार दिव्य विग्रह का ध्यान तथा गुणानुवाद का श्रवण कीर्तन व्यर्थ माना जाय।

[भक्त रत्न श्री मथुराप्रसाद जी जयपुर]

## भक्ति के संरक्षक

| | |
|---|---|
| भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी | १११) |
| लेफ्टेनेन्ट सरदार रघुवीरसिंह जी सांधावालिया राजा सांसी अमृतसर | १११) |
| पं जैनारायण जी भोड़ाकला, गुड़गावां | ११०) |
| धर्म सीह माबजी जेठवा कालरीप्रोप्राइटर झरिया | १०१) |
| ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी। | १०१) |
| आनरेबिल सरदार जुगेन्द्रसिंह जी मनिस्टर आफ एग्रीकलचर लाहौर | ,, |
| बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी | ,, |
| राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ, बी, ई, रामपुरा | ५१) |
| सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा | ५१) |
| ला० जोहरी मलजी रेवाड़ी | ५१) |
| सेठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा | ५१) |
| मुक्खी चरडूमल बलिराम जी भटिण्डा | ५१) |
| सर आपा राव नातोले साहिब सी एस. ई. के. बी. ई. रेवेन्यू मेम्बर गवालियर | ५१) |
| प्रो० बाबूलाल जी भार्गव एम. ए. दिल्ली | ४२) |
| राव श्रीराम जी रईस नांगल | २५) |
| महाशय शोभाराम जी डूंगरवास | २५) |
| बाई लक्ष्मादेवी भगनी राव जगमालसिंहजी रईस नांगल | ,, |
| श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी | ,, |
| सेठ बनवारी लाल जी लोहिया दिल्ली | ,, |
| ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्धा | ,, |
| लाला दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर | ,, |
| राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली | ,, |
| श्री भक्तीदेवी धर्मपत्नी लाला नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी | ,, |
| श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी लाला प्रभुदयाल जी ,, | ,, |
| श्रीमती गणपतिदेवी धर्मपत्नी लाला गंगाप्रसाद जी दादरीवाले, साहबगंज | ,, |
| राव गजराजसिंह जी बी, ए, एल, एल, बी; गुड़गावां | ,, |
| सेठ नागरमल जी सेखासरिया आनरेरी मजिस्ट्रेट रामचनाबाद | ,, |
| प्रेमसुख हीरालाल जनरल ठेकेदार रेवाड़ी | ,, |
| एस, जे, राव पवार होम मेम्बर गवालियर स्टेट, | ,, |
| राय बहादुर सरदार बसाखासिंह जी नई दिल्ली | ,, |
| पी. एन, कौल बैरिस्टर दवान भूतपूर्व दिवास स्टेट लाहौर | ,, |
| चौधरी जीवनदास जी आनरेरी मजिस्टेट झंग | ,, |
| लाला कृष्णलाल जी जींद | २५) |

## सहायक

| | | | |
|---|---|---|---|
| पा. टी. शाह जयपुर | १३) | सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी | ५) |
| जमादार उमरावसिंह भाडावास | ११) | जमादार दीपचनद जी | ५) |
| राव साहब चौधरी हेतराम जी दौलतपुर | ११) | लाला ओंकारमल जी कानपुर | ५) |
| चौधरी हुकमासह जी निखरी | ११) | चौधरी दौलतराम जी पटधारी नाहरी | ५) |
| पण्डित जगन्नाथ जी रेवाड़ी | ११) | लाला हरिश्चन्द्र जी प्रेमहाउस, दिल्ली | ,, |
| लाला अमीचन्द नरसिंहदास भिवानी | ११) | पण्डित मथुराप्रसाद जी जमालपुर | ,, |
| चौधरी गणपतसिंह जी यादव पटीकड़ा | ११) | बाबू जगन्नाथ यादव लखनऊ | ५) |
| चौधरी मनोहरसिंह जी ,, पालहावास, | ,, | श्रीमती सुमित्रादेवी पान का दरीबा जैपुर | ५) |
| लाला छोटेलाल घासीराम जी दिल्ली | ,, | लाला न्यादरमल जी दिल्ली | ,, |
| लाला सरदारीलाल जी क्लाथ मार्केट दिल्ली | ,, | लाला रामेश्वर जी गुप्ता ,, | ,, |
| राव घीसाराम जी गढीबोलनी | ,, | लाला प्रभुदयाल जी जतोख | ,, |
| चौधरी इन्द्रसिंह जी सिरहोल | १० | त्रिवेणीदेवी धर्मपत्नी लाला रामकरणदास खरक | ,, |
| बाबू शिवरामसिंह जी गढीबोलनी | ७) | लाला श्रीराम जी गुप्ता भटिण्डा | ,, |
| माई गुलाबोदेवी दिल्ली | ५) | बाबू जयदयाल भार्गव भोड़ाकलां | ,, |
| लाला बनारसीदास दिल्ली | ५) | रा०सा० ला० सेवकराम एम, एल, सी- लाहौर | ,, |
| महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी | ५) | पं, नानकचन्द एम, एल. सी लाहौर | ,, |
| श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौधरी जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ । | ५) | श्रीमान् धानी चन्द लाहौर | ५) |
| श्रीमान् पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली | ५) | श्रीमती सरस्वती देवी आश्रम रेवाड़ी | ५) |
| रा० ब० लेखनारायण सिंह जी बाढ, पटना | ५) | श्रीमती दुर्गीदेवी भिवानी | ५) |
| रा०सा० बांकेबिहारीलालजी तहसीलदार चिडावा | ५) | डाक्टर कुन्तलकुमारी दिल्ली | ५) |
| बा० बैजनाथसिंह यनंगयोग, बर्मा | ५) | हवलदार ठाकरसिंह मूसपुर | ५) |
| | | सूरजमल सुरोलिया खेतड़ी | ५) |

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी ।

# भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९ पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

# विषय सूची


| विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १. वेदोपदेश | | १९५ |
| २. अतिथी सेवा पर यश दीनबन्धुदास | | १९७ |
| ३. भक्ति की महिमा [श्री गणेशीलाल जी चौधे | | २०२ |
| ४. भगवत् के दो स्वरूप [श्री पूज्य भोले बाबाजी | | २०३ |
| ५. मतवाला साधक [ले० राम | | २०८ |
| ६. धर्मव्याख्या [श्री रेवाधर जी पाण्डेय | | २१० |
| ७. गोसांई तुलसीदास जी के लिखित उदाहरण [श्री मधुमंगल जी मिश्र बी० ए० | | २१३ |
| ८. प्रार्थना (कविता) [ले० प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम | | २१७ |
| ९. गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भक्ति अमान [श्रीस्वामी आत्मानन्द जी | | २१७ |
| १०. राधेश्याम (कविता) [ले श्री मदनगोपाल जी सिंहल | | २२२ |
| ११. महात्मा सच्चिदानन्द का उपदेश [भक्त शिरोमणी श्रीमथुराप्रसाद जी | | २२२ |
| ८. भजन | | २२५ |

REGD. No. L. 2077

# भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहित | मूल्य | ॥=) |
| २. | भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ... | " | ।) |
| ३. | वेदोपनिषत् ... ... | " | ।) |
| ४. | अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला ... ... | " | ।) |
| ५. | ज्ञानधर्मोपदेश ... ... | " | ।।) |
| ६. | ज्ञान भक्ति योग संग्रह ... ... | " | =) |
| ७. | शब्द सदाचार संग्रह ... ... | " | ।) |
| ८. | सत्य शब्द संग्रह ... ... | " | ।=) |
| ९. | शब्दसंग्रह ... ... | " | ।।) |
| १०. | सारसंग्रह ... ... | " | =) |
| ११. | भाषा फक्किका प्रकाश ... ... | " | ॥) |
| १२. | भगवद्भक्तांक ... ... | " | ॥=) |
| १३. | भगवदंक ... ... | " | ॥) |

नोट-:एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालोंको डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहिये।

मिलने का पता:-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

"भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।